सद्गुरवे नमः

सद्गुरु कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

वर्ष 53 | जुलाई-अगस्त-सितम्बर 2023 | अंक 1

ज्यों तिल माहिं तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझ ही में, जाग सके तो जाग॥

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

विषय-सूची

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com
वार्षिक शुल्क : 60.00
एक प्रति : 16.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1600.00

	लेखक	पृष्ठ
कविता		
तीरथ नहाये क्या भया	सद्गुरु कबीर	1
किसने की दुर्गति हमारी	जितेन्द्र दास	38
होनहार सोई होता है	हेमंत हरिलाल साहू	42

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 21 परमार्थ पथ / 28
बीजक चिंतन / 39

लेख

दो पाटों के बीच	श्री सदानंद शाही	7
स्वभाव का छुईमुईपन	डॉ. श्री रामचरण महेन्द्र	11
कबीर और उनकी कविता	डॉ. श्री शुकदेव सिंह	14
धर्म का स्वरूप	डॉ. श्री संपूर्णानंद जी	17
चमत्कारों का चिन्तन विरोधी खेल	श्री अखिलेश मिश्र	24
परमार्थ की रीढ़ है व्यवहार	धर्मेन्द्र दास	30
सब धर्मों-मजहबों की एकता	डॉ. श्री भगवान दास	43
हंस की रहनी		53

कहानी

धिक्कार	मुंशी श्री प्रेमचंद	48
तंत्र मंत्र	दिनेन्द्र दास	63

विशेष ध्यान शिविर

कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज के तत्त्वावधान में निम्न स्थलों पर निम्नांकित तिथियों पर विशेष ध्यान शिविर का आयोजन किया जा रहा है—

14 अगस्त से 20 अगस्त, 2023 : श्री कबीर संस्थान, नवापारा (राजिम), रायपुर, छत्तीसगढ़
सम्पर्क : 09165283688, 06263782235

4 सितम्बर से 11 सितंबर, 2023 : कबीर पारख संस्थान, प्रीतमनगर, प्रयागराज
सम्पर्क : 09451369965, 09451059832

उक्त ध्यान शिविरों में सीमित साधकों के लिए ही व्यवस्था रहेगी। अतः कोई भी साधक किसी भी शिविर में बिना पूर्व अनुमति के न आवें। जो साधक जहां के शिविर में भाग लेना चाहें, वहां के पते पर ही संपर्क करें, अन्य स्थल पर नहीं। जो साधक ध्यान शिविर के दौरान पूर्ण मौन पालन कर सकें तथा पूरी अवधि तक रुक सकें वे ही भाग लें। ध्यान शिविर में भाग लेने वालों का शहर, बाजार जाना वर्जित रहेगा। जो लोग मोबाइल पूरी तरह से बंद रख सकते हैं वे ही ध्यान शिविर में भाग लें।

कबीर संस्थान के नये प्रकाशन

1. धरती पर स्वर्ग : लेखक—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब—प्रायः लोग मरने के पश्चात स्वर्ग जाने की कामना करते हैं और मानते हैं कि स्वर्ग कहीं आकाश में है, परंतु यह सिर्फ एक कल्पना है। प्रस्तुत पुस्तक 'धरती पर स्वर्ग' में यह बताया गया है कि प्राणिमात्र के साथ दया, करुणा तथा प्रेमपूर्ण सद्गुण-सदाचारमय व्यवहार-आचरण करके इसी धरती को स्वर्ग से सुंदर बनाया जा सकता है। यह पुस्तक पूज्यवर सद्गुरु अभिलाष साहेब जी के प्रवचनों का संकलन है। मूल्य–150 रुपये।

2. जीवन जीने की कला : लेखक—धर्मेन्द्र दास—प्रेम जीवन जीने की सर्वोत्तम कला है। प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न ढंग से यह बताया गया है कि मिठाई में जो स्थान शकर का है, भोजन में जो स्थान नमक है, आपसी जीवन व्यवहार में वही स्थान प्रेम का है। प्रेमपूर्ण व्यवहार से मनुष्य अपने जीवन को तथा अपने घर-परिवार को नंदन-कानन तथा स्वर्गमय बना सकता है। मूल्य–120 रुपये।

3. आत्म विकास के साधन : लेखक—धर्मेन्द्र दास—वैज्ञानिक एवं भौतिक विकास की दौड़ में मनुष्य अध्यात्म को यानी भुला दिया है या तो नजरअंदाज कर दिया है । जबकि हकीकत यह है कि आध्यात्मिक विकास के बिना कोई भी भौतिक विकास मनुष्य को कभी मानसिक प्रसन्नता एवं शांति-सुख का अनुभव नहीं करा सकता । आध्यात्मिक विकास के लिए क्या-कौन-सा साधन अपेक्षित है, 'आत्म विकास के साधन' नामक इस पुस्तक में इसी विषय का वर्णन है। मूल्य–100 रुपये।

4. संत कबीर का मानव धर्म : लेखक—धर्मेन्द्र दास—सद्गुरु कबीर की एकमात्र मंशा यही थी कि मनुष्य अपने बनाये जाति-वर्ण-वर्ग तथा मत-मजहब-संप्रदाय जनित घेरे से निकले और अहं-हीनत्व की भावना त्यागकर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से मनुष्य बनकर मिले और मनुष्यता का व्यवहार करे। सद्गुरु कबीर का धर्म मानव धर्म है और मानव धर्म ही सर्वोपरि धर्म है, इसी तथ्य को 'संत कबीर का मानव धर्म' नामक इस पुस्तक में निरूपित किया गया है। मूल्य–90 रुपये।

5. मुक्ति का प्रवेश द्वार : लेखक—धर्मेन्द्र दास—जाने-अनजाने हर व्यक्ति के मन में मुक्ति या मोक्ष की अभिलाषा रहती है। मुक्ति या मोक्ष का अर्थ है दुख-बंधन-परतंत्रता से छुटकर मन का हर समय शांत-संतुष्ट-तृप्त रहना और यह मरने के बाद की स्थिति नहीं है किंतु इसी जीवन की स्थिति है। और यह स्थिति आत्मज्ञान प्राप्त कर सबसे निस्स्वार्थ सेवा एवं प्रेम का व्यवहार करते हुए सबसे सब समय निर्मोह, निष्काम एवं अनासक्त रहने से प्राप्त होती है। 'मुक्ति का प्रवेश द्वार' नामक इस पुस्तक में इसी तथ्य का निरूपण किया गया है। मूल्य-100 रुपये।

6. सत्संग और साधना : लेखक—धर्मेन्द्र दास—सत्संग का परिनिष्ठित अर्थ है—सत्य का संग। परम सत्य मनुष्य का अपना आपा, स्व चेतन सत्ता है। अतः अपनी आत्मा में लौट आना, आत्मस्थित हो जाना ही सत्संग है और इसके लिए साधना की आवश्यकता होती है। साधना का अर्थ है ऐसा आचरण, ऐसी रहनी जिससे मन के विकार, चंचलता-बहिर्मुखता मिटकर मन निर्मल-निर्विकार होकर संयत-अंतर्मुख हो जाये। इस पुस्तक में इसी विषय का वर्णन किया गया है। मूल्य-120 रुपये।

7. सुख-समृद्धि की 100 कहानियां : लेखक—हीरेन्द्र दास—कहानियां चाहे काल्पनिक हों चाहे सत्य घटनाओं पर आधारित उनमें प्रेरणा एवं शिक्षा होती हैं तथा लोकहित की भावना निहित होती है। इसी लोकहित की भावना रखकर लेखक ने इसमें 100 कहानियों का संकलन किया है। जो प्रेरक भी हैं और मार्मिक भी। मूल्य–75 रुपये।

8. मुक्ति का मार्ग (पद्य संग्रह) : लेखक—हीरेन्द्र दास—इस पुस्तक में लेखक द्वारा रचित 150 पदों का संकलन है। मूल्य–65 रुपये।

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71

Postal Regd. No. A.D. 253/2000

कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज

का

छियालीसवां वार्षिक अधिवेशन

दिनांक – 26-27-28 अक्टूबर 2023

दिन – गुरूवार, शुक्रवार, शनिवार

क्वार शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा

स्थल–कबीर आश्रम, कबीर नगर, इलाहाबाद

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है । यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 16 रुपये | वार्षिक 60 रुपये | आजीवन 1600 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

प्रयागराज 211011

उत्तर प्रदेश

Vist us : wwwkabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस, प्रा. लि., पन्नालाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

सरगुण की करि सेवा, निरगुण का करु ज्ञान ।
सरगुण निरगुण से परे, तहाँ हमारा ध्यान ॥ कबीर साखी ॥

वर्ष 53] प्रयागराज, श्रावण, वि. सं. 2080, जुलाई 2023, सत्कबीराब्द 625 [अंक 1

तीरथ नहाये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय॥

मूँड़ मुड़ाये हरि मिले, सब कोई लेय मुड़ाय।
बार बार के मूड़ते, भेड़ न बैकुंठ जाय॥

मन मैला तन उजरा, बगुला कपटी रंग।
तासे तो कौआ भला, तन मन एकै रंग॥

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
मनुवा तो चहुँ दिश फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥

माला फेरत जुग भया, मिटा न मन का फेर।
कर का मनका डारि के, मन का मनका फेर॥

मंत्र तंत्र सब झूठ है, मत भरमो जग कोय।
सार शब्द जाने बिना, हंसा गया बिगोय॥

मन मक्का दिल द्वारिका, काया कासी जान।
दस द्वारे का देहरा, तामें ज्योति पिछान॥

पारख प्रकाश

कबीर साहेब का सगुण तत्त्व

कबीर साहेब की प्रशस्ति में प्रसिद्ध वैष्णव भक्त-प्रवर श्री नाभादासजी ने लिखा है—'हिन्दू तुरुक प्रमाण रमैनी शब्दी साखी। पच्छपात नहीं बचन सबन के हित की भाखी।' अर्थात कबीर ने अपने रमैनी, शब्द और साखियों में हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए निष्पक्ष होकर कल्याणकारी बातें कही हैं। उन्होंने कहीं किसी के लिए पक्षपातपूर्ण बात नहीं कही। 'ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर' की घोषणा करने वाला पक्षपातपूर्ण बातें कहेगा भी क्यों! जब किसी से दोस्ती (मोह) होती है और किसी से वैर (राग) होता है, साथ ही किसी को अपना और किसी को पराया माना जाता है तभी पक्षपातपूर्ण बातें कही जाती हैं। कबीर के लिए न कोई अपना था और न कोई पराया, किन्तु सभी उनके अपने थे। वे सबको अपने प्राण के समान प्रिय मानते थे। इसीलिए वे कहते हैं—'मैं रोवों यह जगत को' तथा 'घाव काहि पर घालों, जित देखूं तित प्राण हमारो।'

वैष्णव भक्तप्रवर श्री नाभादास जी की तरह तत्कालीन सभी संत-भक्तों की यह स्वीकृति है कि कबीर ने न तो कोई पक्षपातपूर्ण बात कही और न मुंह देखी बातें कहीं। उन्होंने सत्य का संदेश दिया और तत्कालीन प्राप्त विचारों की समीक्षा की। उन्होंने कोई मतवाद खड़ा नहीं किया और न यही कहा कि जो मेरे विचारों को नहीं मानेगा वह नरक में जायेगा, बल्कि उन्होंने कहा—'साँचा शब्द कबीर का, हृदया देखु विचार।' मैं सत्य का संदेश देता हूं, तुम अपने हृदय में विचारकर देखो कि यह सत्य है या नहीं। यदि सत्य लगे तो मानना, अन्यथा छोड़ देना।

कबीर वाणी का अध्ययन-मनन और उस पर विचार-मंथन करने वाले अनेक लोग यह प्रश्न करते हैं कि कबीर साहेब सगुण उपासक थे या निर्गुण उपासक और उन्होंने सगुण उपासना का संदेश-उपदेश दिया है या निर्गुण उपासना का? इस प्रश्न का उत्तर जानने से पहले यह समझना होगा कि सगुण-निर्गुण की परिभाषा क्या है और सगुण-निर्गुण कहते किसे हैं? सगुण का सीधा-सरल अर्थ है गुण-सहित, गुणवाला और निर्गुण का अर्थ है गुण रहित। यहां गुण सहित-सगुण का अर्थ-भाव सद्गुण-दुर्गुण युक्त होना और निर्गुण-गुणरहित का अर्थ-भाव सद्गुण-दुर्गुण से रहित होना नहीं है, किन्तु सगुण का अर्थ है वह जो खाता-पीता हो, बोलता-चालता हो, बात-व्यवहार करता हो, मोह-वैर, क्रोध-क्षमा करता हो तथा सुख-दुख का अनुभव करनेवाला हो और निर्गुण वह है जो इसके विपरीत हो अर्थात जिसमें यह सब गुण न हों।

सगुण-निर्गुण की दूसरी परिभाषा यह है कि जो रज, सत, तम इन तीनों गुणों से युक्त है वह सगुण है और जिसमें ये तीनों गुण न हों वह निर्गुण है। शरीर से लेकर संसार की छोटी-बड़ी जितनी भी चीजें हैं सब में ये तीनों गुण विद्यमान हैं। प्रकृति का जहां तक विस्तार है उसमें कुछ भी इन तीनों गुणों से अछूता नहीं है। सब कुछ त्रिगुणमय है। प्रकृति क्षेत्र में जहां तक क्रिया है, रजगुण है। पुष्टि-वृद्धि सतगुण है तथा विनाश तमगुण है। उत्पाद, ध्रौव्य तथा विनाश क्रमशः रजगुण, सतगुण तथा तमगुण के ही कार्य हैं। इस निर्णय से पूरा प्रकृति-संसार सगुण है। प्रकृति-पार जो चेतन तत्त्व है वह उत्पाद-विनाश से रहित एकरस-अपरिवर्तित है, इसलिए वह रज, सत, तम इन तीनों गुणों से रहित होने से निर्गुण है। परन्तु यह तथ्य भी ध्यान में रखना होगा कि रज, सत, तम गुणों से परे होने से चेतन को निर्गुण अवश्य कहा जाता है, किन्तु वह शून्य तो है नहीं, अस्तित्ववान है। उसकी स्वतंत्र सत्ता है और वह ज्ञान-गुणसंपन्न है। अतः ज्ञान-गुण वाला होने से चेतन सगुण भी है।

उक्त विवेचन से यह बात बड़ी सरलता से समझी जा सकती है कि मिट्टी, पानी, आग, हवा तथा इनसे निर्मित चित्र, मूर्ति, नदी, पेड़, पहाड़ आदि की जितनी

और जो भी उपासना है सब सगुण उपासना है, क्योंकि ये सब रज-सत-तम इन तीनों गुणों से युक्त हैं। इसी प्रकार माता-पिता, गुरु-पीर, साधु-संत या पशु-पक्षी की पूजा-उपासना है यह भी सगुण उपासना है, क्योंकि ये सब भी रज-सत-तम गुणों के अंदर ही हैं। इनसे पृथक शुद्ध चेतन त्रिगुणातीत है। जो इन सबसे हटकर मन को शांत कर, मन के सारे संकल्पों को त्यागकर अपने शुद्ध-निर्मल-निर्विकार आत्मा की उपासना है, मन को आत्मलीन कर लेना वह निर्गुण उपासना है, क्योंकि शुद्ध चेतन में रज-सत-तम गुणों का लेश भी नहीं है। वह इन तीनों गुणों से सर्वथा परे है।

रज-सत-तम—तीनों गुणों से युक्त होने के कारण मिट्टी, पानी, आग, हवा, चित्र, मूर्ति, पेड़, पहाड़ आदि की उपासना सगुण उपासना अवश्य है, किन्तु निरा जड़ तथा निर्जीव होने से इन सबको न सुख-दुख का अनुभव होता है, न इन्हें भूख-प्यास लगती है और न ये किसी से क्रोध-क्षमा, मोह-वैर आदि करते हैं, न ये सोच-समझकर कर्म-व्यवहार करते हैं, न खाते-पीते हैं तथा इन्हें प्रणाम-अभिवादन आदि करने पर ये आशीर्वाद भी नहीं देते, क्योंकि ये सब ज्ञान-गुण से सर्वथा रहित हैं, इसलिए इनकी उपासना-पूजा, आरती-वंदना करना निर्गुण उपासना है। दूसरी तरफ माता-पिता, गुरु-पीर, साधु-संत जीवित मनुष्य या प्राणी की पूजा-उपासना तथा सेवा-रक्षा करना सगुण उपासना है, क्योंकि ये सब खाते-पीते हैं, बात-व्यवहार करते हैं, समय पड़ने पर क्रोध-क्षमा, मोह-वैर आदि करते हैं, सोच-समझकर क्रिया-कर्म करते हैं, सुख-दुख का अनुभव करते हैं तथा प्रणाम-अभिवादन करने पर आशीर्वाद देते हैं। ज्ञान गुण संपन्न होने से माता-पिता, गुरु-पीर, साधु-संत जीवित मनुष्य की पूजा-सेवा करना ही सच्ची विवेक युक्त सगुण उपासना है, न कि चित्र-मूर्ति, पानी-पत्थर की पूजा-उपासना।

प्रश्न यह है कि कबीर साहेब सगुण उपासक हैं या निर्गुण उपासक? उनका संदेश सगुण उपासना के लिए है या निर्गुण उपासना के लिए? पूरी कबीर वाणी का आद्योपांत अध्ययन-मनन करने पर यह कहीं भी पता नहीं चलता कि कबीर साहेब ने अपने को कहीं सगुण या निर्गुण उपासक कहा हो। वे तो देश-काल-पात्र के अनुसार अपनी बात कहते रहे हैं। उसमें आलोचना, भर्त्सना, डांट-फटकार है तो प्यार-दुलार, पुचकार भी तथा असत्य का खंडन है और सत्य-तथ्य का मंडन। कबीर साहेब के समकालीन संत-भक्तों ने भी कबीर साहेब को सगुण या निर्गुण उपासक नहीं कहा है। जब स्वयं कबीर साहेब ने तथा उनके समकालीन संतों-भक्तों ने उनको सगुण उपासक या निर्गुण उपासक नहीं कहा है तब यह प्रश्न क्यों उठता रहता है कि कबीर सगुण उपासक हैं या निर्गुण उपासक? इसका उत्तर है कि कबीर साहेब पर लिखने वाले विद्वानों द्वारा फैलाया गया भ्रम कि कबीर ने सगुण उपासना को महत्त्व नहीं दिया, क्योंकि उन्होंने निर्गुण आत्म तत्त्व की उपासना पर बल दिया है।

निश्चित ही कबीर साहेब ने कहीं भी चित्र-मूर्ति की पूजा-उपासना की बात नहीं की है और मंदिर-मसजिद जाकर पूजा-इबादत करने को कहा है, बल्कि इनका तो वे खंडन करते हैं। इस संदर्भ में उनकी कुछ साखियां प्रसिद्ध हैं—

पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।
ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार॥
पाहन केरी पूतरी, करि पूजे संसार।
याहि भरोसे मत रहो, बूड़ो काली धार॥
कबीरन भक्ति बिगारिया, कंकड़ पत्थर धोय।
अन्तर में विष राखि के, अमृत डारिनि खोय॥
कांकर पाथर जोड़िके, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, का बहिरा हुआ खुदाय॥
मुल्ला चढ़ि किलकारिया, अलह न बहिरा होय।
जेहि कारन तू बाँग दे, दिल ही अन्दर सोय॥

इस प्रकार की कुछ और साखियां भी हो सकती हैं और इन साखियों में कबीर साहेब जड़ वस्तुओं की पूजा का निषेध करते हैं, सगुण उपासना का नहीं। इसी प्रकार जब लोग तीर्थस्नान, बाह्य छाप-तिलक, वेषभूषा आदि

को ही धर्म का मुख्य अंग और पाप काटने तथा कल्याण का साधन मानकर उनमें ही उलझकर रह जाते हैं और सद्ज्ञान, सदाचरण, त्याग-तप-संयम आदि पर ध्यान नहीं देते हैं, बल्कि इनसे अछूते ही रह जाते हैं, तब कबीर साहेब उनका भी खंडन करते हैं। द्रष्टव्य हैं उनकी कुछ साखियां—

तीरथ नहाये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहे, धोये बास न जाय॥
मूँड़ मुड़ाये हरि मिले, सब कोई लेय मुड़ाय।
बार बार के मूड़ते, भेड़ न बैकुंठ जाय॥
रामहि राम पुकारते, जिभ्या परिगौ रौंस।
सुधा जल पीवै नहीं, खोद पिवन की हौंस॥
बैठा रहे सो बानिया, ठाढ़ रहै सो ग्वाल।
जागत रहे सो पहरुआ, तेरि धरि खायो काल॥
टोपी पहिरे माला पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी शब्दै गावत भूले, आतम खबरि न जाना॥

उक्त साखियों में कबीर साहेब मात्र बाह्याचार का खंडन करते हैं न कि सगुण उपासना का। सच्चाई यह है कि धर्म के क्षेत्र में जितना कबीर साहेब ने सगुण उपासना पर बल दिया है उतना किसी अन्य संत-भक्त कवियों ने नहीं दिया है। वस्तुतः कबीर साहेब ही सच्चे सगुण उपासक हैं। हां, यह कहा जा सकता है कि सगुण उनका साध्य नहीं है, साधन है। साध्य तो निर्गुण है। उनकी एक प्रसिद्ध साखी है—

सरगुण की करि सेवा, निरगुण का करु ज्ञान।
सरगुण निरगुण से परे, तहाँ हमारा ध्यान॥

इस साखी में कबीर साहेब स्पष्ट रूप से सगुण की सेवा करने को कह रहे हैं। ध्यान रहे, सेवा की आवश्यकता सदैव सगुण-जानदार सजीव को ही होती है, निर्गुण-निर्जीव को नहीं। निर्गुण-निर्जीव की सेवा भी सगुण-सजीव की सुविधा-आराम के लिए ही की जाती हैं। निर्गुण-निर्जीव की सेवा है उसकी उचित देखरेख, रक्षा तथा मरम्मत। जैसे एक मकान की सेवा है नित्य उसमें झाड़ू-पोंछा लगाकर उसे साफ-सुथरा रखना, समय-समय पर उसकी लिपाई-पोताई तथा रंग-रोगन करते रहना, टूट-फूट होने पर मरम्मत आदि करना। परन्तु यह सब उस मकान में रहने वाले सगुण-सजीव मनुष्यों की सेवा-सुविधा के लिए ही की जाती है। इसी प्रकार अन्य निर्गुण-निर्जीव वस्तुओं के संबंध में भी समझा जा सकता है।

जो लोग यह कहते हैं कि कबीर साहेब निर्गुण उपासक थे, उन्होंने सगुण-साकार उपासना को महत्त्व नहीं दिया, वे लोग कबीर साहेब की निम्न वाणियों पर निष्पक्ष होकर विचार करें कि ये वाणियां सगुण उपासना की हैं या निर्गुण-निराकार उपासना की—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥
गुरु को पूजे गुरुमुखी, बाना पुजे साध।
षटदर्शन जो पूजहीं, ताकर मता अगाध॥
पूरा साहेब सेइये, सब विधि पूरा होय।
ओछे से नेह लगाय के, मूलहु आवै खोय॥
कर बन्दगी विवेक की, भेष धरे सब कोय।
सो बन्दगी बहि जान दे, जहाँ शब्द विवेक न होय॥
संत महन्तो सुमिरो सोई, जो काल फाँस ते बाँचा होई।
तेहि साहेब के लागहु साथा, दुइ दुख मेटि के होहु सनाथा।
आपे गुरु कृपा कछु कीन्हा, निर्गुण अलख लखाई।

ये साखियां मात्र बानगी हैं। इस ढंग की साखियां कबीर वाणी में भरी पड़ी हैं, जिनमें स्पष्ट रूप से गुरु, साधु, संत की पूजा-सेवा करने का निर्देश किया गया है। प्रश्न है गुरु, साधु, संत सगुण हैं या निर्गुण? जब निर्जीव-बेजान चित्र-मूर्ति, माटी, पानी, पेड़, पहाड़, पत्थर की पूजा सगुण उपासना हो सकती है तब सजीव-जीवित गुरु, संत, साधु की पूजा-उपासना, सेवा सगुण उपासना क्यों नहीं हो सकती? वस्तुतः चित्र-मूर्ति, पेड़, पहाड़, पत्थर, माटी-पानी की पूजा-आरती-सेवा ही निर्गुण उपासना है, क्योंकि उनमें न कुछ जानने-समझने का गुण है और न सुख-दुख का अनुभव, न उन्हें भूख प्यास, ठंडी-गरमी आदि लगती है और न वे कुछ सोच-समझकर क्रिया-कर्म-व्यवहार कर सकते हैं। ज्ञान-गुण से सर्वथा रहित होने से वे निर्गुण हैं। दूसरी

तरफ गुरु, साधु, संतों में जानने-समझने का गुण हैं, उन्हें सुख-दुख अनुभव होता है, उन्हें भूख-प्यास, ठंडी-गरमी लगती है, वे हानि-लाभ सोच-समझकर कर्म-व्यवहार करते हैं, उनका जीवन सद्गुणों से परिपूर्ण होता है, वे ज्ञान-गुण से संपन्न होते हैं, इसलिए वे सगुण हैं और उनकी सेवा-पूजा-उपासना ही सच्ची सगुण उपासना है। कबीर साहेब संत-गुरु की ही पूजा-सेवा करने को ही नहीं कहते, किन्तु प्राणिमात्र के लिए दया-करुणा तथा मानव मात्र के साथ प्रेम, सेवा, समता, एकता पूर्वक भाईचारा का व्यवहार करने को कहते हैं। इसलिए कबीर साहेब सच्चे सगुण उपासक हैं।

पहले तो लोग सगुण की व्याख्या ही गलत करते हैं और मनमानी ढंग से सुख-दुख, भूख-प्यास आदि के अनुभव तथा ज्ञान-गुण से सर्वथा रहित निर्जीव बेजान चित्र-मूर्ति, पेड़, पहाड़-पत्थर को सगुण मान लेते हैं और इनकी पूजा को सगुण उपासना और यह भी कहते हैं कि यह सबके लिए सहज सुलभ होने से सरल है। वे यह कभी ध्यान नहीं देते कि जिस प्रकार चित्र-मूर्ति सहज सुलभ हैं उसी प्रकार साधु-गुरु-संत भी सर्वत्र सहज सुलभ हैं।

दुनिया में हर मनुष्य के परंपरागत अपने कुछ विचार, विश्वास, कुछ पूजा-पाठ के नियम तथा मान्यताएं होते हैं और उनको ही वे परम सत्य मान लेते हैं और अपने से भिन्न या विरुद्ध विचार, विश्वास, मान्यताएं रखने वाले तथा पूजा-पाठ करने वालों को हीन, छोटा, भटके हुए तथा धर्मद्रोही समझने लग जाते हैं। कबीर साहेब के साथ भी यही हुआ। कुछ स्वार्थी किस्म के चतुर-चालाक लोगों ने देखा कि कबीर के सत्यतापूर्ण निष्पक्ष तार्किक विचार जितने अधिक फैलते जायेंगे हमारा सदियों से सुरक्षित स्वार्थ का घर उजड़ता तथा ध्वस्त होता चला जायेगा। कबीर के निष्पक्ष सर्वकल्याणकारी विचार आम जनता तक न पहुंचे इस के लिए कुछ स्वार्थी किस्म के चतुर-चालाक लोगों ने कबीर विचार के विरोध में अनेक प्रकार की बेढंगी बातें कहना शुरू कर दिया। उन्हीं में से एक यह भी है कि कबीर निर्गुण-निराकार के उपासक हैं तथा वे सगुण-साकार उपासना के विरोधी हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि जो सुख-दुख, भूख-प्यास, ठंडी-गरमी आदि के अनुभव से तथा ज्ञान-गुण से रहित निर्जीव-बेजान है वह सब निर्गुण है और जो इन सबके संयुक्त है, जिसमें उक्त गुण मौजूद हैं वह सब सजीव-जानदार होने से सगुण है। कबीर साहेब सजीव-जानदार की पूजा-सेवा करने का उपदेश-निर्देश करते हैं, इसलिए वे सच्चे सगुण उपासक हैं। इस संदर्भ में उनका यह कथन कितना सटीक और प्राणवान है—

आँख न मूँदों कान न रूधों, काया कष्ट न धारों।
खुले नैन हँस हँसि पहिचानों, सुंदर रूप निहारों॥

सगुण उपासना का इससे अधिक सुंदर एवं जीवंत उदाहरण और क्या होगा। जहां जायें और जिधर देखें सब जगह सब तरफ आपको चलते-फिरते, खाते-पीते, बात-व्यवहार, क्रिया-कर्म करते सजीव-सगुण परमात्मा दिखाई पड़ेंगे। बस देखने की दृष्टि चाहिए और इस सजीव-सगुण परमात्मा के दर्शन करने के लिए आंख-कान बंद कर के काया-कष्टपूर्ण तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है। इस सजीव-सगुण परमात्मा के दर्शन तो खुली आंखों से होता है। इस सजीव-साकार-सगुण परमात्मा की अवहेलना कर के बाहर और कोई सगुण परमात्मा मिलने वाला नहीं है। जिस चित्र या मूर्ति को सगुण देवी-देवता और परमात्मा मानकर लोग उसकी पूजा-उपासना करते हैं उस चित्र या मूर्ति को बनाने वाला यही सजीव-साकार मनुष्य रूप सगुण परमात्मा ही है। यदि दुनिया में सगुण-सजीव मनुष्य रूपी परमात्मा न हो तो कोई चित्र या मूर्ति बन नहीं सकता। बाहर कोई सगुण परमात्मा किसी को मिलेगा तो प्राणी रूप में मिलेगा और कबीर साहेब इसी सगुण-साकार परमात्मा की सेवा-पूजा-भक्ति का संदेश देते हैं।

सेवा की आवश्यकता सजीव प्राणियों को ही होती है, निर्जीव को नहीं, किन्तु सेवा साधन है, साध्य नहीं। सेवा-पूजा द्वारा जब चित्त-मन शुद्ध हो जाता है तब

अपने शुद्ध स्वरूप आत्म तत्त्व का ज्ञान होकर ध्यानाभ्यास द्वारा उसमें स्थिति होती है। उस सत-रज-तम गुणों से रहित निर्गुण आत्मतत्त्व में स्थित होना ही निर्गुण परमात्मा का साक्षात्कार करना है और वह सभी प्राणियों के हृदय में निवास कर रहा है। वह सभी प्राणियों का अपना स्वत्व-स्वरूप एवं अस्तित्व है। इसी के लिए कबीर साहेब का कथन है—

मृगा की नाभी कस्तूरी, मृग ढूँढे बन माँहि।
ऐसे घट घट राम है, दुनिया जानत नाहिं॥
ज्यों तिल माहिं तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझही में, जाग सके तो जाग॥
जाको ध्यान धरत विधि हरिहर, मुनिजन सहस अठासी।
सो तेरे घट माहीं विराजे, परम पुरुष अविनाशी॥
तेरा साहेब है घट भीतर, बाहर नैना क्यों खोले।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिल गये तिल ओले॥

यह पहले ही देख आये हैं कि अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक संसार में जितनी भी चीजें हैं सब रज-सत-तम गुणों के संयुक्त हैं। कोई और कुछ इनसे रहित या परे नहीं है, किन्तु इनका जो द्रष्टा और ज्ञाता है वह इन तीनों गुणों से सर्वथा रहित और परे है, क्योंकि वह प्रकृति-पार है, इसलिए वह शुद्ध आत्म तत्त्व निर्गुण है और वह सबका अपना स्वत्व है तथा शरीर संबंध से उसे हृदयनिवासी कहा जाता है। वह सभी प्राणियों के हृदय में विराजमान है। उसी के लिए कबीर साहेब ने कहा है—'तेरा साहेब है घट भीतर, बाहर नैना क्यों खोले।' वह निर्गुण आत्मतत्त्व आंखों से देखा नहीं जा सकता, किन्तु वही सबको देखने वाला है। आंखों से जो कुछ दिखाई देता है जड़ रूप विषय है, वह परमात्मा-ब्रह्म या आत्मा कैसे हो सकता है ! इसीलिए निर्गुण आत्मतत्त्व, जिसे परमात्मतत्त्व या ब्रह्म भी कहा जाता है, उसके लिए केन उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षुंषि पश्यति।
तदैव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

अर्थात जिसे आंखों से नहीं देखा जा सकता, किन्तु जिसकी सत्ता से आंखें देखने में समर्थ होती हैं उसको तू ब्रह्म जान और आंखों से देखकर जिसकी तू उपासना करता है वह ब्रह्म नहीं है।

इस लंबे विवेचन का सार है कि सच्चा सगुण-साकार परमात्मा सजीव प्राणी ही है न कि निर्जीव चित्र, मूर्ति, पानी, पेड़, पहाड़ और निर्गुण-निराकार परमात्मा सबके हृदय में विराजमान सबका अपना-स्वत्व आत्म तत्त्व है और यही परम उपासनीय है। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को इसी का संदेश देते हैं और कहते हैं—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।

अर्थात—आत्मा ही देखने, सुनने, मनन करने तथा निदिध्यासन करने योग्य है। हे मैत्रेयी, तू इसी आत्मा का दर्शन कर। आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन और विज्ञान से ही मानो सब कुछ जाना हुआ हो जाता है।

सगुण और निर्गुण परमात्मा का थोड़े में बड़ा सुंदर वर्णन ऋग्वेद के इस मंत्र में हुआ है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्यात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ 10/90/1॥

अर्थात—उस विराट पुरुष के हजारों (असंख्य) सिर, हजारों आंखें तथा हजारों हाथ-पैर आदि हैं। वह पूरी दुनिया में सब तरफ व्याप्त होकर दस अंगुल ऊपर बैठा हुआ है।

इसका तात्पर्य है कि प्राणिमात्र की सामूहिकता-समष्टि विराट पुरुष परमात्मा है और पूरी दुनिया में प्राणी सर्वत्र हैं। यह सबकी सामूहिकता सगुण विराट पुरुष परमात्मा है, किन्तु यह निर्गुण रूप में नाभि से दस अंगुल ऊपर सबके हृदय में स्थित है।

जो लोग यह कहकर जनता में भ्रम फैलाते हैं और उन्हें कबीर साहेब के संदेश-उपदेश से दूर रखने का प्रयास करते हैं कि कबीर निर्गुण-निराकार के उपासक हैं जो सबकी पहुंच से बाहर है तथा कबीर सगुण-

साकार परमात्मा को नहीं मानते, उन्हें अपने कथन पर पुनर्विचार करना चाहिए। और उन्हें इस पर भी विचार करना चाहिए कि सुख-दुख, भूख-प्यास आदि का अनुभव करने वाला ज्ञान-गुण संपन्न सजीव प्राणी सगुण हैं या इन सब गुणों से सर्वथा रहित निर्जीव चित्र-मूर्ति आदि सगुण हैं। यदि आप निर्जीव चित्र-मूर्ति आदि को सगुण मानकर उनकी पूजा-उपासना-भक्ति करते हैं तो आपका यह अपना विचार है और आप इसके लिए सर्वथा स्वतंत्र हैं। जो आपके निर्जीव चित्र-मूर्ति आदि जिन्हें आपने या आप जैसे किसी अन्य मनुष्य ने ही गढ़ा-संवारा-बनाया है, न मानकर या उनकी पूजा-उपासना-भक्ति न कर प्राणिमात्र के साथ दया-करुणा तथा मानव मात्र के साथ प्रेम-सेवा, भाईचारा, आदर पूर्वक व्यवहार करने का संदेश-उपदेश देते हैं, वे सगुण उपासक क्यों नहीं? हां, यह कह सकते हैं कि सगुण उनका साध्य नहीं, साधन है। साध्य तो निर्गुण है। वस्तुतः सगुण-साकार सजीव मनुष्यों के साथ सारे भेदभाव से ऊपर उठकर प्रेम-सेवा का संदेश देने वाले कबीर सच्चे सगुण परमात्मा के उपासक हैं। यदि सच्चे सगुण परमात्मा मनुष्यों के साथ एकता-समता-भाईचारा का व्यवहार किया जा सके तो हमारी धरती स्वर्ग से अधिक सुंदर और आनंददायक हो सकती है और यही पूजा-भक्ति का फल है।

—धर्मेन्द्र दास

दो पाटों के बीच

लेखक—श्री सदानंद शाही

चलती चक्की देखि के दिया कबीरा रोय।
दुई पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय॥

कबीर का यह दोहा एक विराट रूपक है। कबीर के समय के संदर्भ में भी और आज के संदर्भ में भी। कई तरह के द्वैत तब भी थे और अब भी हैं, जिनमें साधारण मनुष्य पिस रहा था और पिस रहा है।

ऐसे द्वैत भीतर भी थे, बाहर भी। मनुष्य के सामने डगमग बना हुआ था। इधर जाएं कि उधर। आगे कुआं, पीछे खाई वाली स्थिति थी। लोक की चिंता करें कि परलोक की। सगुण का ध्यान करें कि निर्गुण का। शास्त्र जितने मुंह उतनी बातें बोलने वाले थे। धर्म के भी दो रूप थे। एक तरफ कर्मकांड था, तीर्थ-व्रत थे, छुआछूत थी, जात-पांत था और इनसे जुड़े पाखंड थे। दूसरी तरफ मेहनतकश गरीब जनता के दुख-दर्द और अभाव थे, लोक और परलोक दोनों की चिंता थी।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीर के समय में धर्म की सत्ता आज की तुलना में ज्यादा प्रबल रही होगी। राजधर्म होने के नाते इस्लाम का प्रभुत्व था ही। हिंदू भले ही राज्यच्युत हो गये हों, धर्म के ठेकेदारों का वर्चस्व यथावत रहा होगा। आश्चर्य नहीं कि राजनीतिक पराभव ने हिंदुओं के धार्मिक भाव को प्रखर बना दिया हो। दोनों धर्मों के अपने कर्मकांड थे, अपने-अपने पाखंड थे, दोनों में ही खाने और दिखाने के अलग-अलग दांत थे। ऐसे कठिन पाटों के बीच पिसने के लिए सामान्य जनता अभिशप्त रही होगी।

यह देखकर कबीर रो उठते हैं। कबीर का रोना भी एक प्रतीक है। यह रुदन जितना आत्मिक है, उतना ही सामाजिक भी।

सुखिया सब संसार है खाये और सोवे।
दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे॥

यह जागे हुए व्यक्ति का रोना है। दुनिया खा रही है और सो रही है और निरंतर एक चक्की में पिसती चली जा रही है। जो पिसे जा रहे हैं, उन्हें भान नहीं है कि वे पिसे जा रहे हैं। कबीर जगे हैं और देख रहे हैं-समझ रहे

हैं। इस तरह सोये हुए होने पर, जिसमें स्वयं के पिसे जाने का एहसास नहीं है, कबीर रो रहे हैं। कबीर का यह रोना जागरण का छंद है। यह कोई आसान रोना नहीं है :

सोई आँसू साजना, सोई लोक विडाँहि।
जो लोइन लोहू चुवै, जानो हेत हियाहिं॥

वही आंसू साधारण प्रेम में निकलते हैं, वही प्रियतम के प्रेम में निकलें तो क्या बात हुई। जब रोने में आंखों से लहू के आंसू निकलें, तब सच्चा प्रेम जानिए। कबीर के चार सौ वर्ष बाद संक्रमण के एक दूसरे दौर में गालिब भी कहते हैं : यह रोना आसान नहीं है—इस रोने के लिए काफी साहस चाहिए, हिम्मत चाहिए :

ऐसा आसाँ नहीं लहू रोना
दिल में ताकत जिगर में हाल तो हो

कबीर इसी ताकत और जज्बे के साथ रोते हैं। इसलिए यह कोई साधारण रुदन नहीं है। यह युगांतरकारी रुदन है। इस रुदन में बुद्ध की करुणा है। पीड़ा और बेचैनी के लिए लहू का एक-एक कतरा निचोड़ कर दे देने का संकल्प है। इसलिए यह निष्क्रिय रुदन नहीं, सक्रिय हस्तेक्षप है। अज्ञान-जनित अबोधपन पर मार्मिक व्यंग्य भी है। यहीं पर कबीर का कबीरत्व जाग्रत होता है। वे दो कठिन पाटों के बीच साबुत खड़े होने की चुनौती स्वीकार करते हैं और चलती हुई चक्की के बीच मानों अड़ जाते हैं, समय की चलती चक्की को उलट देने के लिए। बहती हुई युग धारा को बदल देने, मोड़ देने के लिए। कबीर इसलिए युगांतरकारी हैं। आज भी धार्मिक, राजनैतिक पाखंड और नग्न उपभोक्तावाद के कठिन पाटों वाली चक्की चल रही है। असहाय सामान्य जन पिसने के लिए अभिशप्त है। आज स्वयं पिसे जाने का खतरा उठाकर समय की चक्की में अड़ जाने के लिए कौन है?

उपभोक्तावाद-नग्न उपभोक्तावाद का दर्शन मुक्त बाजार व्यवस्था के रूप में प्रकट हुआ है। चकमक करता चकाचौंध फैलाता। प्रभु वर्ग ने उसे ऐसे परोसा है, मानो दुख से मुक्ति का यही उपाय है। एक दुनिया है, जो यह चकाचौंध फैला रही है। दूसरी दुनिया है, जो इस चकाचौंध की ओर बेतहाशा भाग रही है। एक ऐसी भी दुनिया है, जो इस चकाचौंध में जल रही है। कबीर के समय की माया नये तरह से अवतरित हो रही है। माया का यह गुण-धर्म है कि वह आभास तो देती है सुख का, पर वास्तव में दाह उत्पन्न करती है। मुक्त बाजार व्यवस्था की माया भी ठीक ऐसी ही है। यह इसी नारे के साथ आयी कि मुक्ति यहां है, सुख यहां है और जो इस सुख की ओर लपके तो पाया कि यहां दाह है, विनाश है किसानों-मजदूरों की चीखें हैं, आत्महत्याएं हैं। दारुण दंश है। कबीर कहते हैं :

ओनई आई बादरी, बरसन लगा अंगार।
उठि कबीर धाह दे, दाझत है संसार॥

बादल घिर आये, तो लोगों ने सोचा, पानी बरसेगा। तपन मिटेगी, प्यास बुझेगी, पृथ्वी सजल होगी, जीवन का दाह मिट जायेगा, किंतु हुआ ठीक उलटा। यह दूसरे तरह के बादल हैं, इनसे पानी की बूंदें नहीं, अंगारे बरस रहे हैं, संसार जल रहा है। कबीर ऐसे छल-बादल से संसार को बचाने के लिए बेचैन हो उठते हैं।

खेद है कि हमारे समय में ऐसे छल-बादलों के त्रास से उबारने के लिए कोई नहीं है। कहने को अनेक राजनीतिक दल हैं, राजनेता हैं, पर उनकी कथनी कुछ और है, करनी कुछ और है। मुख और हैं, मुखौटे कुछ और। ये भी छल-बादल हैं। दुख, गरीबी, बदहाली, असमानता के खिलाफ लड़ते चले आ रहे हैं। उनकी लड़ाई जितनी तेज हो रही है, सारी चीजें दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ रही हैं। बुद्धिजीवी वर्ग के पास घड़ियाली आंसू भी नहीं बचे हैं, अपनी सुविधाओं के लिए बेशर्म कशमकश है। मठ हैं, महंत हैं, संत हैं, फकीर हैं, सबके पास अपने-अपने स्वार्थों की गठरी है, सब उसमें जल रहे हैं।

ऐसा कोई ना मिला, जासो रहिए लागि।
सब जग जरता देखिया, अपनी अपनी आगि॥

यह जन सामान्य की असहायता का करुण गान है। कबीर अपने समय में ऐसे की तलाश कर रहे थे, जो अपनी आग में न जल रहा हो, बल्कि जिसमें दूसरे को

आग से बचाने की क्षमता हो। जहां पहुंचकर शांति पायी जा सके। जिसके साथ लगकर रहा जा सके।

मुक्ति के केंद्र काशी में कबीर को ऐसा कोई नहीं मिला और वे ऐसे की तलाश करते हुए मगहर ऊसर में आये। कबीर का मुक्ति के, ज्ञान के केंद्र काशी से मगहर आना भी एक प्रतीक है। कबीर शायद यह जान चुके थे कि तथाकथित उदात्त, विराट, महान् और पवित्र में मुक्तिदायिनी क्षमता नहीं है। मुक्तिदायिनी क्षमता क्षुद्र, अनाम और सामान्य में है। काशी के पंडितों को छोड़ कर कबीर का मगहर के बुनकरों के बीच आना एक बड़ा अर्थ संकेत है। एक तरफ ब्रह्मज्ञान का पाखंड है, दूसरी तरफ श्रम की साधना है। कबीर चलती हुई चक्की को यहां भी उलटते हैं। जिस समाज में श्रम करने वाले को हेय दृष्टि से देखा जाता हो, उस समाज में श्रम को मुक्ति के विधान के रूप में प्रतिष्ठित करना एक बड़ी चुनौती थी। इसलिए वे श्रमपूर्ण सामान्य जीवन को आडंबरपूर्ण भव्यता की तुलना में श्रेष्ठ मानते हैं। सामान्य के प्रति कबीर का यह आग्रह ऐसा है कि जिस राम की महानता की इतनी चर्चा हो, स्वयं कबीर जिसके प्रेम में पागल हैं, वह कोई महान् या विराट सत्ता नहीं है। वह परमप्रिय भी प्रायः समकक्ष ही है :

हरि मोरा पिउ मैं हरि की बहुरिया।
राम बड़े मैं तनक लहुरिया॥

बेशक राम बड़े हैं, पर कबीर उनसे थोड़े ही छोटे हैं। कबीर राम की विराटता का ऐसा भव्य सांचा नहीं बनाते कि सामान्य आदमी स्वयं को तुच्छ और अकिंचन समझे। कभी-कभी खिलंदड़े अंदाज में कह उठते हैं :

छोटा कहूँ तो बहु डरौं, बड़ा कहूँ तो झूठ।
मैं क्या जानूं राम को, नैना कबहूं न दीठ।

छोटा कहने में डर लगता है। बड़ा कहें तो झूठ होगा। जिसे आंखों से देखा नहीं सिर्फ अनुभव से जाना है, उसके बारे में वे कोई बड़ा तूमार नहीं बांधते। वे कुंडलि में कस्तूरी की तरह बसने वाले राम को निजी और एकांतिक अनुभव से सार्वजनीन अनुभव में बदल देने के लिए बेचैन दिखाई पड़ते हैं। जहां राम मंदिरों और मजिस्दों की दीवारों में कैद हों और उन पर कुछ विशिष्ट वर्गों का इजारा कायम हो, वहां कबीर :

मेरा मन सुमिरै राम को, मेरा मन रामहि आहि।
इब मन रामहि ह्वै चला, सीस नवावों काहि॥

कह कर रामत्व को मनुष्यत्व का पर्याय बना देते हैं। गर्व मिट जाता है। क्षुद्रता लुप्त हो जाती है। मनुष्य और राम का भेद मिट जाता है। कबीर की व्यथा इसी रामत्व को प्रकट करने की है। ऐसा रामत्व, जो जीवन देने वाला है—भय, संत्रास और अभाव से मुक्त जीवन। इसी का संधान करने के लिए कबीर पर्वत-पर्वत घूमते हैं, रो-रो कर नैन गंवा बैठते हैं, पर वह बूटी, वह उपाय नहीं मिलता, जिससे जीवन संभव हो :

परबत परबत मैं फिरा, नयन गँवाया रोय।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जाते जीवन होय॥

ध्यान रहे कि यह परबत-परबत घूमना हिमालय या विंध्य या अरावली की पर्वत श्रृंखला नहीं है, वे तथाकथित समकालीन महानताएं हैं जो जीवन देने का दावा करती हैं, मुक्ति का उपाय बताने का दंभ भरती हैं, पर वहां जाकर नैन गंवाने के अलावा और कुछ नहीं मिलने वाला है। कबीर उस बूटी की तलाश में हैं, उस सूत्र की तलाश में हैं, जिससे जीवन का गुणनखंड हल हो। सारे पर्वत छानने के बाद कबीर इसी नतीजे पर पहुंचते हैं कि मुक्ति का कोई बना-बनाया रास्ता नहीं है। इसलिए नये रास्ते की तलाश करनी होगी।

नये रास्ते की तलाश, नये राह का निर्माण भी कोई आसान काम नहीं है। अपना घर जलाकर नये रास्ते की तलाश में निकलना होगा। संचित मोह, भ्रमित आस्थाएं, प्रत्येक तरह के पूर्वाग्रह सब कुछ को जलाकर निकलना होगा। महानता के अपने दुर्ग या मठ से बाहर निकलना होगा। जन सामान्य के बीच में जाकर पुकार लगानी होगी। कबीर ऐसी पुकार लगाते हैं :

कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठा हाथ।
जो घर जारे आपना, चले हमारे साथ॥

कबीर के समय में घर जलाने से काम चल सकता था, आज घर के साथ बाजार को भी जलाना आवश्यक

है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीर के समय में बाजारों की एक सकारात्मक भूमिका थी। बाजारों की उपस्थिति से किसान-कारीगर वर्ग बंद सामंती व्यवस्था के बरक्स अपना स्वतंत्र आर्थिक आधार विकसित कर रहा था। इसी आधार पर इस वर्ग ने सापेक्षिक स्वायत्तता अर्जित की। इस स्वायत्तता ने किसानों-कामगरों के खोये हुए आत्मसम्मान को नवजीवन प्रदान किया। इन वर्गों ने अपने नेता और संत पैदा किये। इन संतों ने वर्ण और जाति के आधार पर बरते जाने वाले स्तर भेद को चुनौती दी। मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद-बुद्धि का निषेध किया। उत्तर भारत में कबीर इन्हीं संतों के अग्रदूत थे। अभिप्राय यह कि कबीर के समय में बाजार ने एक क्रांतिकारी भूमिका अदा की। सामंती व्यवस्था में धार्मिक कर्मकांड और तज्जनित पाखंड ने मनुष्य की सत्ता को छोटा करने की चेष्टा की थी। बाजार ने किसानों-कामगरों को सापेक्षिक स्वायत्तता प्रदान कर मनुष्य को उसकी स्वाभाविक ऊंचाई प्रदान की थी।

आज बाजार की भूमिका उलट गयी है। आज बाजार की शक्तियां मनुष्य को छोटा करने के लिए सन्नद्ध हैं। बाजार ने जीते-जागते मनुष्य को पण्य वस्तु में बदलकर उसे लघु मानव बना दिया है। इसलिए आज के मनुष्य की लड़ाई जितनी सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक पाखंड और उन्माद से है, उतनी ही बाजार के वर्चस्व से है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीर का साहित्य और कबीर का संघर्ष मनुष्य को आदमकद बनाने की सतत चेष्टा है। कबीर मनुष्य को छोटा बनाने की इजाजत किसी को नहीं देते चाहे वे धार्मिक-सामाजिक कुरीतियां हों, राजनीतिक सत्ता हो, शास्त्र ज्ञान का आतंक हो, माया की चकाचौंध हो, या फिर अपने राम ही क्यों न हो।

इसलिए आज जब बाजार की माया और धर्म का बाजार मिलजुलकर मनुष्य को नये सिरे से लघु मानव में तब्दील करने की कोशिश कर रहे हैं, कबीर नयी अर्थवत्ता के साथ मनुष्यता के पक्ष में एक विराट प्रकाश की तरह दिखाई दे रहे हैं।

इसलिए यदि आज हर कोई कबीर की ओर उम्मीद से देख रहा है तो उचित ही है। यहीं पर यह कहना आवश्यक है कि यह उचित तो है पर आसान नहीं है। यदि कबीर को आसान समझा गया और उन्हें केवल लेखक समझा गया तो खतरा है कि बाजार की शक्तियां स्वयं कबीर का इस्तेमाल कर ले जायें। यह केवल कपोल कल्पना नहीं है। इस तरह के प्रयत्न दिखाई भी दे रहे हैं। दलित आन्दोलन के उभार के दौर में कुछ लोग कबीर को दलित चेतना के प्रतीक के रूप देख रहे हैं। इसलिए राजनीतिक हलकों में कबीर में वोट की संभावना भी निहारी जा रही है। समतावादी विचारों के दुश्मन और वर्ण व्यवस्था के समर्थक भी कबीर को सामाजिक अभिप्राय से विरत कर केवल उनके अनहद नाद को ले उड़े हैं। संसद के अंकगणित का कागजी गुणनखंड हल करते-करते स्वयं को अप्रासंगिक बना चुकी कम्युनिस्ट पार्टियां भी कबीर के मुक्तनाद का झंडा लेकर स्वयं को प्रासंगिक बनाने में लगी हैं।

किंतु लाख टके का सवाल यह है कि क्या कबीर सचमुच इतनी आसानी से पचाये या भुनाये जा सकते हैं? क्या कबीर का अनुगामी होना इतना आसान है? शायद नहीं। कबीर का रास्ता वे ही चुन सकते हैं, जो अपनी संकीर्णताओं और क्षुद्रताओं के घर को जलाकर बाजार की माया का दांत उखाड़ने के लिए प्रस्तुत हों। तकनीक और धार्मिक-सामाजिक कर्मकांडी उन्माद में पीसे जाते हुए मनुष्य की वेदना से जिनकी आत्मा विसुर रही हो, जो माया की चकाचौंध से गाफिल नहीं हैं, जाग रहे हों और सामाजिक व्यथाओं को देख रहे हों और सब कुछ को बदल देने की अपराजेय विकलता के साथ काशी (केंद्र) को छोड़कर मगहर (परिधि पर) आने का जोखिम उठाने को तैयार हों।

हमारे समय में मनुष्यता की मुक्ति के लिए ऐसी ही शक्तियों का इंतजार है। इसलिए आज कबीर को याद करने का अर्थ ऐसी ही शक्तियों का संधान करना है। अपने भीतर अपने बाहर।

('कबीर की खोज' से साभार)

स्वभाव का छुईमुईपन जीवन के लिए अत्यन्त हानिकारक है

लेखक— डॉ. श्री रामचरण महेन्द्र

अंग्रेजी के महाकवि कीट्स की मृत्यु केवल 27 वर्ष की उभरती जवानी में हो गयी। उन्हें कोई खास बीमारी नहीं थी। मृत्यु की परिस्थितियां कुछ इस प्रकार थीं। कीट्स अच्छे कुशल कवि थे। वे ललित कविताएं लिखा करते थे। सभी मुक्तकण्ठ से उनकी कविताएं पसंद करते थे। काव्यजगत में उनकी सम्माननीय स्थिति थी।

एक बार संयोग से उनके विरुद्ध एक ध्वंसात्मक लेख एक आलोचनात्मक पत्रिका में छपा। यह व्यक्तिगत द्वेष और ईर्ष्यावश लिखा गया था। इसमें झूठे ही उन पर कीचड़ उछाली गयी थी। पुरानी शत्रुता निकालने और बदनाम करने के लिए व्यर्थ ही निराधार आरोप लगाये गये थे। कीट्स ने इस निन्दा को पढ़ा और उनके भावुक मन पर इसका घातक प्रभाव पड़ा। उन्हें भयानक मानसिक आघात लगा। वे उसी मानसिक पीड़ा से बीमार पड़ गये और क्षयग्रस्त हो जवानी में ही मृत्यु को प्राप्त हुए।

कल्पना कीजिये, जिस चढ़ते यौवन में लोग विवाह करके जीवन-क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं, उसी में स्वभाव के छुईमुईपन के कारण बेचारा भावुक कवि मर गया। इतना छोटा-सा कारण, बेबुनियाद निन्दा और कवि की निर्बलता यह कि वह उसी को सत्य मानकर मन-ही-मन परेशान और उद्विग्न! और फिर उसी आघात से मृत्यु! स्पष्ट है कवि में निन्दा को सहन करने की शक्ति न थी! वे संसार की आसुरी शक्ति से अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे। वे यह नहीं जानते थे कि मन का छुईमुईपन मृत्यु का एक कारण बन सकता है। भावुकता की अधिकता भी मौत के मुंह में धकेल सकती है।

राजा दशरथ अति वियोग-दुःख से स्वर्गवासी हुए

जब मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम वनवास जा रहे थे, पूरी अयोध्या शोकसंतप्त थी। नागरिक सौ-सौ आंसू रो रहे थे। कई तो दुःख के कारण मर्च्छित होकर गिर पड़े थे। राजमहल में माताएं करुण विलाप कर रही थीं; परिवार के सब सदस्य शोकसंतप्त होकर अश्रुपात कर रहे थे।

स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक कोमलहृदया होती है। साधारण-सी बात का उस पर दूषित प्रभाव पड़ता है। यह सहज स्वाभाविक था कि श्रीराम की माता कौसल्या जी पर पुत्रवियोग का अधिक प्रभाव होता। उनका एकमात्र पुत्र उन्हें बिलखती छोड़ पूरी जवानी में वन-वन की खाक छानने के लिए अपनी पत्नी के सहित उनसे बिछुड़ रहा था। अति कारुणिक परिस्थिति थी। सम्पूर्ण अयोध्या पर दुःख के काले बादल बरस रहे थे।

वास्तव में दुःख माता कौसल्या और पिता दशरथ दोनों को ही था। शायद कौसल्याजी को दशरथजी की अपेक्षा अधिक ही था, पर कौसल्याजी में सहिष्णुता अधिक थी, जबकि दशरथजी का स्वभाव छुईमुई-जैसा था। वे अति कोमल थे और इस अधिक दुःख मानने की आदत ने, इस झूठी भावुकता ने उनके प्राण ले लिये। वे मानसिक आघात सहन न कर सके थे।

छुईमुई का पौधा छूने से ही मुरझाने लगता है। ऐसे स्वभाव के मनुष्य भी संसार के तनिक-से विरोध और निन्दा से, तनिक-सी विपत्ति और कठिनाई से बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। उनका मानसिक संतुलन भंग हो जाता है। वे एकाएक उद्विग्न हो उठते हैं। यह भावुकता का दुर्गुण है। इस अति भावुकता के भयंकर दुष्परिणाम निकलते हैं। अतः स्वभाव का छुईमुईपन सदा दूर कर सहिष्णुता को अपनाना चाहिए।

यह संसार बुरे तत्त्वों से भी भरा हुआ है। व्यर्थ ही बुरा कहनेवाले, जिनकी आदत निन्दा करने की है, सर्प-बिच्छू जैसे मनुष्य भी बहुत से हैं। चोर, डाकू, कुटिल, पापी और राक्षस अच्छे कार्यों में विघ्न उपस्थित किया ही करते हैं। राक्षस ऋषियों की तपश्चर्या में विघ्न उपस्थित किया करते थे। अन्त में इस अत्याचार के विरुद्ध मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को धनुष उठाना पड़ा था।

अकारण निन्दा से डरिये मत

संसार में हर देश में, हर युग में लोकहितैषी, परोपकारी, प्रगतिशील, उपकारी महान आत्माओं की निन्दा हुई है; आज भी हो रही है और भविष्य में भी होती रहेगी। पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष और निन्दा करना राक्षसवृत्ति के मनुष्यों का स्वभाव है। बिना निन्दा के कोई महापुरुष और नेता नहीं बचा है।

प्रायः यह निन्दा निराधार होती है और पीठ पीछे बदला निकालने की भावना से ऐसी की जाती है। कुछ दूषित वृत्तिवाले लोग आपकी असाधारण योग्यता और गुणों को देखकर जलते हैं और इसलिए आपकी उन्नति में रोक लगाना चाहते हैं। जब स्वयं उनका वश नहीं चलता, तो चुगली कर दूसरों को भड़काते हैं। थोथी निराधार निन्दा को सह सकना और बिना किसी विक्षोभ की प्रतिक्रिया के उसको पचा लेना, उस निन्दारूपी विष को शिव के विष की तरह पचा लेना मनुष्य का महान गुण है। इस सहिष्णुता को विकसित करना चाहिए।

महान व्यक्तियों ने निन्दकों की कभी किंचित भी परवा नहीं की है। उलटे उससे लाभ ही उठाया है। निन्दा से एक बड़ा लाभ यह होता है कि यह सहज ही पता लग जाता है कि लोग क्या चाहते हैं? अधिकतर निन्दा उसी बात को लेकर की जाती है, जिसको लोग चाहते हैं। लोकप्रियता का विस्तार निन्दा से होता है। निन्दा के बहाने लोग लोकसेवकों को समझने का प्रयत्न किया करते हैं।

अप्रत्यक्षरूप से निन्दा मनुष्य की प्रसिद्धि की मानसिक प्रतिक्रियामात्र है। निन्दक पीठ पीछे बुराई इसी से करता है कि वह झूठी अफवाहें फैलाता है। उसमें सार कुछ भी नहीं होता। वह बात को आपके सामने कहने से डरता है।

किसी भी उन्नति के आकांक्षी को निराधार और थोड़े दिन ठहरनेवाली लोक-निन्दा से भयभीत होकर अपने उच्च ध्येय का त्याग नहीं करना चाहिए। जो निन्दा सह सकता है, वह संसार का बड़े-से-बड़ा कष्ट सहन करने में सक्षम होता है।

निन्दा और संकट के समय मानसिक संतुलन न खोयें

प्रिंस बिस्मार्क के ये शब्द बड़े अनुभव के हैं—

'किसी भी निन्दा या विरोध के अवसर पर मनुष्य को चाहिए कि वह उस मानसिक आघात से बचे, जो उसके मन पर चट्टान की तरह पड़कर उसे साहसहीन कर सकता है। मस्तिष्क में शीतलता बनी रहे, वह पूर्ण संतुलित रहे। यदि मस्तिष्क निराश या भयभीत हो गया, तो समझ लेना चाहिए कि उसके सारे अस्त्र-शस्त्र छिन गये, आपत्तियों से टक्कर लेने के सारे साधन ही समाप्त हो गये।'

मस्तिष्क को मानसिक आघात से बचाने का सबसे सरल उपाय है—तटस्थता। दूसरे शब्दों में अपने पर आयी आपत्ति से अपने को अलग कर उसका इस प्रकार अध्ययन कीजिये, जैसे उस आपत्ति से आपका कोई भी सम्बन्ध नहीं है, मानो वह किसी दूसरे पर आयी हुई है और आप उसके दर्शकमात्र हैं।

जेम्स ऐलन का उदाहरण

महात्मा जेम्स ऐलन ने एक संस्मरण में लिखा है—

'मेरे परिचय क्षेत्र में दो ऐसे व्यक्ति रहे हैं जिनकी जीवनभर की कमाई एक साथ ही नष्ट हो गयी। एक दिन प्रातःकाल उन्होंने समाचारपत्रों में पढ़ा कि जिस बैंक में उनका रुपया जमा था, वह दिवालिया हो गया। यह समाचार पढ़ते ही एक व्यक्ति इतना दुःखी और निराश हुआ कि उसका मस्तिष्क बिलकुल विरुद्ध हो गया। वह बिलकुल पागल हो गया। यह था उसके स्वभाव का अति भावुक होना।

किंतु दूसरे व्यक्ति ने, जो आपत्ति से नहीं डरता था, गम्भीर मुसकान से कहा—'ठीक है, परमात्मा जो कुछ करता है भला ही करता है। मेरी अबतक की कमाई का पैसा तो मेरे हाथ से निकल गया। अब शोक करने से वह वापस मिल नहीं सकता, हां, परिश्रम करने से पुनः मिल सकता है। मेरा पैसा ही तो गया, हाथ-पैर और हौसला तो नहीं गया। मैं फिर कमा लूंगा।'

ऐसा सोचकर वह व्यक्ति पुनः नवीन उत्साह और दृढ़ आत्मविश्वास से काम में जुट गया और कुछ ही दिनों में पुनः धनवान हो गया; किंतु भावुक आदमी रोता और छाती पीटता हुआ शोक ही करता रहा। उसने उद्योग का सहारा न लेकर निराशा का पल्ला पकड़ा, जिससे दिन-दिन दयनीय होता हुआ विपत्ति का शिकार बना।

मन को कष्टसहिष्णु बनाना चाहिए।

मन को सहनशील बनाइए

हमारे यहां कहा गया है—

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तोमर्तं मर्चयति द्वयेन।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तुमग्ने माकिर्नोदुरिताय धायीः॥

(ऋग्वेद 1/147/5)

अर्थात (इस संसार में निन्दा-द्वेष करनेवाले बहुत-से व्यक्ति हैं) जो लोग सदैव दूसरों की निन्दा और परछिद्रान्वेषण में लगे रहते हैं, समझदार आदमी को उनसे सदा-सर्वदा बचना चाहिए; क्योंकि उनके साथ रहने से अपना स्वभाव भी निन्दक बनता है।

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्म भवति सारथिः॥

(ऋग्वेद 1/158/6)

स्मरण रखिये, अज्ञानी व्यक्ति लोभातुर होकर रोग-शोक से (अपनी भावुकता के कारण) अति दुःख पाते हैं, किंतु धर्मनिष्ठ, दृढ़संकल्प और पौरुषवाले पुरुष अपना ज्ञान और विज्ञान बढ़ाकर स्वयं बन्धनमुक्त होते हैं और अपने उदाहरण से दूसरों को भी संसार-सागर से पार ले जाते हैं।

मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाऽविष्यवे रिपवेदुच्छुनायै।
मादत्वते दशते मादते नो मा रीषतेसहसावन् परा दाः॥

(ऋग्वेद 1/189/5)

याद रखिये, इस संसार में अच्छे और बुरे व्यक्ति सभी प्रकार के प्राणी हैं। यहां एक ओर मङ्गल-मृदु स्वभाववाले सज्जन-सत्पुरुष भी हैं और बाघ, सर्प, बिच्छू आदि हिंसक विषैले जीव-जन्तु भी हैं। वे समाज में यत्र-तत्र लुके-छिपे फैले हुए हैं।

इसलिए समझदार पुरुष को चाहिए कि वह दुष्टों से तथा उनकी निराधार निन्दा से बचकर साधुपुरुषों का साथ करे। अर्थात शुभ कर्मों को ही ग्रहण करे और दुष्कर्मों से सदा-सर्वदा दूर रहे। और यदि वास्तव में हमारे चरित्र में दुर्गुण और बुरी आदतें हैं, तो हम उन्हें दूर करने का डटकर प्रयत्न करें, जिससे किसी को कभी निन्दा करने का मौका ही न मिले—

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे।
मृळा सुक्षत्र मृळया॥ (ऋग्वेद 7/89/3)

अर्थात ईश्वर को साक्षी मानकर अपनी त्रुटियां, ऐब, दुर्गुण तथा दुष्कर्म स्वीकार करते रहें ताकि इनके निवारण में ढील न पड़े। परमात्मा से हमारी यही प्रार्थना हो—

'प्रभो! हमारे दुर्गुण दूर कीजिये।'

स्वभाव का छुईमुईपन त्याग दीजिये। यदि कोई अकारण ही विरोध करता है, तो उसकी निन्दा पर तनिक भी ध्यान मत दीजिये। लोग सदा अच्छाई का विरोध करते रहते हैं, ऊंचा उठने के धुनी लगातार ऊंचे उठते और उन्नति करते ही जाते हैं। वे समाज के ईर्ष्यालु आलोचकों की तनिक भी परवा नहीं करते। महापुरुषों को बड़े विकट विरोधों और कठोर संघर्षों में होकर अपनी उन्नति का मार्ग बनाना पड़ा है। लोग उन्हें समझ नहीं पाये और केवल विरोध के लिए विरोध करते रहे। अन्ततः वे पूर्ण विजयी होकर रहे। दूसरों की कटु आलोचना, निन्दा, कडुवे वचन और विरोध में भी संतुलन बनाये रखने की आदत बनाइये। सहिष्णुता मनुष्य का एक दैवी गुण है। इसे विकसित कीजिये। कोई बुरा कहे, तो आप कदापि बुरा मत मानिये। स्वभाव को सहनशील बनाइये। याद रखिये—

मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्।

(ऋग्वेद 1/41/8)

सत्कार्यों में विघ्न उत्पन्न करने वाले दुष्टों का बहिष्कार कीजिये। उन्हें असुरों की भांति घृणित समझिये जो सत्कार्यों में रोड़े अटकाते हैं।

('महकते जीवन-फूल' से साभार)

कबीर और उनकी कविता की जरूरत

लेखक—डॉ. श्री शुकदेव सिंह

हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के खिलाफ आवाज उठाने वाले पहले सन्त, विचारक और कवि कबीर ही हैं। रूढ़ धार्मिक शास्त्रों, पूजा-उपासना संबंधी जड़ताओं, मंदिर-मस्जिद विषयक अंध आस्थाओं, जाति-वर्ण सम्बन्धी फर्कों और तमाम तरह के भारतीय जीवन के अंतर्विरोधों को उन्होंने निर्ममता के साथ अस्वीकार कर दिया था। वे केवल अस्वीकार नहीं कर रहे थे, स्थापित भी कर रहे थे। मतलब यह है कि वे अपने आस-पास की दुनिया की ओर से आंख बन्द करने वाले, नश्वरता की नियति से घबरा जाने वाले, तटस्थ विरक्त नहीं थे। विरक्ति की महत्ता को जानते और स्वीकारते हुए भी वे कर्म करते हुए अपनी जीविका अर्जित करते हुए सन्तों के लिए धर्म-कर्ममय जगत की रचना कर रहे थे। साधुता को भिक्षाजीवी परोपजीवीपन से उन्होंने ही पहली बार अलग किया था। वस्तुतः वे आंखें खोलकर पूरी तरह जागते हुए, एक सम्पूर्ण सत्य का सम्पूर्ण असत्य के समानान्तर सृजन कर रहे थे। अध्यात्म सम्बन्धी भ्रमों को मिटाकर वे नये अध्यात्म की रचना कर रहे थे। जप, तप और ज्ञान को वे कुछ खास लोगों की चीज नहीं रहने देना चाहते थे। आम आदमी के लिए, सम्पूर्णजन के लिए वे सभी स्तरों पर नये आदर्श की सृष्टि करते हुए नयी नैतिक लड़ाई लड़ रहे थे। वह सारी लड़ाई उन्होंने कविता के निहायत मुलायम और तेज हथियार से लड़ी थी। यह लड़ाई लगातार चलने वाली लड़ाई है, जिससे तरह-तरह के शोषणों के खिलाफ सर उठाने वाली इंसानियत बराबर लड़ती रहती है। कबीर और इंसानियत हमशक्ल चीजें हैं। हर सही आदमी जब कभी आदमी के साथ होता है तो कबीर जैसी ताकतों के साथ होता है और सही व्यवस्था जब वास्तविक और न्यायपूर्ण होती है तो कबीर की ही व्यवस्था के साथ होती है ।

हिन्दू साम्प्रदायिकता के संदर्भ में हिन्दी साहित्य का अध्ययन करनवाले पाठक के लिए कबीर एक समस्या है। इसलिए कि अब्दुल रहीम खानखाना के राम, रसखान के कृष्ण, जायसी के रत्नसेन तो घुमा-फिराकर हिन्दू साम्प्रदायिकता से बंध जाते हैं, लेकिन कबीर के राम का मरम बराबर आना (भिन्न) रहा है, जिसे बूझने वाले लोग बिरले हुआ करते हैं। यह विरलता इसलिए भी है कि हमारे देश में अध्ययन और ज्ञान का रास्ता परसंवेदमार्गी है। शास्त्र और परम्परा से समर्थित रहा है, लेकिन कबीर का रास्ता स्वसंवेदमार्गी है। जो खुद को समझ सकता है, वह कबीर को समझ सकता है। जो अपनी तकलीफ के पैमाने पर दूसरे की तकलीफ को देखता है, जो अपनी भूख, प्यास, उपेक्षा और सामाजिक अत्याचार के वजन पर आम आदमी को समझने की कोशिश करता है, वह कबीर के शास्त्रविरोधी शास्त्र को समझ सकता है, उनके धर्मविरोधी धर्म को धारण कर सकता है। कबीर की पूजा-विरोधी पूजा की प्रासंगिकता उसी आदमी के लिए है, जो सबसे पहले आदमी है और सबसे बाद में आदमी ही है ।

अपने जमाने में कबीर ने देखा था कि पूरी व्यवस्था एक विशेष तरह से जनशोषण कर रही है। जनशोषण के लिए उस समय के शक्तिशाली लोगों ने कानून से भी बड़ा कानून बना रखा था, जिसे 'धर्म' कहा जाता था। धर्म की आड़ में खड़े हो जाने के कारण, शोषक वर्ग अपनी चालाकी को दैवीविधान से जोड़ देता था। आकस्मिक नहीं था कि कबीर को इस चालाक लोक-वेद समर्थित दैवीविधान के खिलाफ आवाज उठानी पड़ी। जिन लोगों के पक्ष में पत्थर, पानी अर्थात मूर्तियां और तीर्थ खड़े थे, उनके खिलाफ कबीर को कविता का शास्त्र खड़ा करना पड़ा। जिन लोगों के पक्ष किताबें, मंदिर, मस्जिद से लैस थे, उन लोगों के खिलाफ कबीर को साधु शब्दावली की सहायता से मुकाबला करने वाला संयम स्थिर करना था। जिन लोगों ने अपने हितों की रक्षा के लिए पुरोहित, शेख और मुल्ले तैयार कर रखे थे, उनके विपक्ष में कबीर ने अपने घर में जुलाहा-मजदूर का कार्य करते हुए श्रम की ताकत से लड़ाई शुरू

की। मिथकीय स्तर पर यह लड़ाई राम-रावण की लड़ाई थी। रथी और विरथी की लड़ाई थी। शिक्षितों, साधन सम्पन्नों के खिलाफ यह एक गरीब कामगर की लड़ाई थी। इस वर्ग की एक भाषा बन चुकी थी, जो बहुत दूर तक प्रतीकात्मक और रहस्यमय शब्दों से विन्यस्त संवाद और सम्प्रेषण को सुलभ बनाने के लिए कबीर ने इस शब्दावली का अपने ढंग से प्रयोग किया। योगपरक शब्दावली, मिथकीय प्रतीक, पुराण कल्पनाएं और अवतार नाम उनकी कविता में हल्के ढंग से आते हैं। उन्हें दर्शन को मारने के लिए दर्शन की तलखी आविष्कृत करनी थी, कूपजल की जगह बहता नीर का महत्त्व बतलाना था।

कबीर ने जिस आत्मीयता से शास्त्रीय संदर्भों और संश्लिष्ट जटिल वक्तव्यों को लोक जीवन और लोक भाषा से जोड़ा वह इस बात का सबूत है कि जनजीवन की अभिव्यक्ति प्रणाली का अन्वेषण जरूरी है। इसी समझ के कारण वे चरितकाव्यों की प्रशस्तिमूलक शब्दावली और अलंकृत भाषा संरचना के समानान्तर सीधी, सपाट, अलंकृत, असरदार काव्यभाषा निर्मित कर पाये। इस काव्य भाषा का एक विचित्र स्वरूप उनकी उलटवासियों में दिखाई पड़ता है, जिसे कुछ टीकाकारों ने प्रतीकों, लक्षणाओं और दार्शनिक कूटों से जोड़ने का प्रयत्न किया। लेकिन यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि उलटवासियां रहस्यमयता का एक स्तर पर उपहास भी करती हैं और रहस्यमयता को इतना अनगढ़ और जटिल बनाकर प्रस्तुत करती हैं कि रहस्यमयता का नाटक ही खारिज हो जाये। इस तरह उलटवासियों की भाषा एक ओर भाषा का सरलीकरण है तो दूसरी ओर जटिल भाषा का मुंहतोड़ उत्तर भी। इस बात को समझने के लिए कबीर की मूल काव्य भाषा को देखा जाना चाहिए और तब यह सहज स्पष्ट हो जायेगा कि उलटवासियों की भाषा जनभाषा का ही एक ऐसा आयाम है—जिसमें कूट और व्यंग्य सार्थक अभिव्यक्ति का एक महत्त्वपूर्ण भाग हुआ करते हैं। इन कूटों और व्यंग्यों को समझने के लिए लोकजीवन विशेष रूप से भोजपुरी और अवधी की भाषाशक्ति को समझना जरूरी है। दरअसल कबीर को जिस समाज की जनता पर अपना असर डालना था, उसकी सारी भाषा चर्या को समझे बिना वे ऐसा कर ही नहीं सकते थे। इसलिए कबीर की भाषा-शक्ति को समझने के लिए कोशों और संदर्भ ग्रन्थों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी जनभाषा का संग्रह और ग्रन्थन करने की। कबीर की पूरी अभिव्यक्ति को समझने के लिए गांव-गांव, गली-कूचों, खेत-खलिहानों, चमार, डोमों, नाई, धोबी, तेली, ब्राह्मण, कसाई, नट, बाजीगर, रंडी, रांडों, चोरों, दलालों, मल्लाहों, धुनिया और जुलाहों की घरेलू भाषा-संपदा का संग्रह अपेक्षित है ।

कबीर ने केवल अभिव्यक्ति पद्धति, वाक्य रचना, शब्द संग्रह की दृष्टि से ही जन-जीवन के भीतर प्रवेश करने का प्रयत्न नहीं किया था, बल्कि साहित्य रूपों की दृष्टि से भी साखी, सबदी, दोहरा जैसे लोकप्रचलित काव्य रूपों के साथ ही चांचर, बेलि, बिरहुली, हिंडोला, बसंत, चौंतीसा और अन्ततः स्वयं अन्वेषित विप्रमतीसी नामक काव्य रूप का प्रयोग किया था। ये सारे के सारे काव्यरूप जनता के राग-विराग, उत्सव-त्योहार में बराबर इस्तेमाल हुआ करते थे। जनता इनके रस-अर्थ से पूरी तरह परिचित थी। इसलिए इन काव्य रूपों के भीतर उनके हित का धर्म और ज्ञान सम्बोधित हुआ तो उन्होंने अपना लिया।

यह लक्ष्य करने की बात है कि सन्त कबीर जितनी तेजी से जनता पर असर डाल रहे थे, उतनी ही तेजी से वर्ण-व्यवस्था के तंत्र को तोड़ रहे थे। जितनी ताकत से मजहबी सनक को खत्म कर रहे थे, उतनी ही शक्ति के साथ व्यवस्था के पक्षधरों ने उनका विरोध भी किया। उनके आस-पास तरह-तरह के विरोधी और चुनौतियों की दुनिया खड़ी हो गयी। यद्यपि उन्होंने सारी चुनौतियों का बड़ी ताकत के साथ मुकाबला किया। शब्द को शब्द से, ज्ञान को ज्ञान से, चमत्कार को चमत्कार से, विचार को विचार से ध्वस्त करते हुए. उन्होंने सन्त शक्ति को नया अर्थ और नयी महिमा दी। लेकिन जब बनारस की महिमा की याद दिलाकर उन्हें छोटा साबित करने का प्रयत्न किया गया, तब वृद्धावस्था के बावजूद उन्होंने इस

चुनौती को स्वीकार कर लिया। शायद उन्हें लगा हो कि वे जनशिक्षण का कार्य प्रायः पूरा कर चुके हैं इसलिए उन्होंने बड़े स्वाभिमान के साथ 'जो कबिरा काशी मरे, रामहि कौन निहोरा' कहते हुए बनारस की सारी तीर्थगरिमा के समानान्तर उजाड़, वीरान मगहर में एक नया तीर्थ खड़ा कर दिया। मगहर के दिन उनके अंतिम दिन थे। वहां उन्होंने उस पिछड़े हुए समाज को अपने सम्बोधन का विषय बनाया था, जो कभी किसी धार्मिक कार्य में हिस्सेदारी नहीं करता था। लेकिन कबीर स्वयं तीर्थ थे। वहां भी उनके आस-पास महत्त्वाकांक्षी सामन्तों का मेला लग गया। इसी का नतीजा था कि उनकी मौत होते-होते तमाशा खड़ा हो गया। जीवन भर उन्होंने न कभी किसी हिन्दू को महत्त्व दिया था न कभी किसी मुसलमान को, लेकिन दो सम्पन्न जागीरदारों ने उनके शव के लिए लड़ाई छेड़ दी। हिंदू बघेल और मुसलमान बिजली खां ने उन्हें मंदिर और मस्जिद में, समाधि और कब्र में दफना लिया। कबीरवंशी और कबीरपन्थी की जमात खड़ी हो गयी। जिस साम्प्रदायिकता के खिलाफ सारी जिन्दगी लड़ रहे थे उसी साम्प्रदायिकता के नाम पर उन्हें ही दो हिस्सों में बांट लिया गया ।

कबीर का जो साहित्य उपलब्ध है, उसके अध्ययन विश्लेषण परम्परा भी बहुत दोषपूर्ण है। उनके दुश्मनों ने उनके साहित्य के द्वारा उन्हें नष्ट करने की कोशिश की है। उन्हें रहस्यवादी, दार्शनिक, वेदान्त का समर्थक, कहने और समझने का लगातार छल किया गया है। जो कबीर इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि वेद विरोधी हैं, अवतारों के निन्दक हैं, वेद-कितेब की परसंवेदमार्गी स्थापनाओं को काटते हैं, उस कबीर को तसव्वुफ वेदांत, मुस्लिम एकेश्वरवाद और इसी तरह के अनेक धार्मिक निष्कर्ष पर जांचने और समझने की कोशिश की गयी है। ये साजिशें एकतरफा नहीं हैं। कबीरपंथ के भीतर से भी हो रही हैं, बाहर से भी हो रही हैं। अनेक कबीरपंथी आचार्य हिन्दू संन्यासियों और वेदान्तियों से स्पर्धा करने के लिए कबीर बीजक में वेदान्त खोज लेते हैं। वस्तुतः ऐसे आचार्य की महत्त्वाकांक्षा, कबीर को एक हिन्दू सन्त के रूप में देखने की है। कबीर के सारे विचारों, तर्कों, जड़ता विरोधी अभिमतों को नष्ट करने के लिए कबीर को अवतार पुरुष मानने वाले लोगों की भी कमी नहीं है। ऐसे लोग भी हैं जो कबीर को एक मुसलमान वंश में पलता हुआ देखकर विचलित होते हैं और बिना संकोच यह कह देते हैं कि कबीर या तो विधवा ब्राह्मणी के पेट से पैदा हुए थे या तो उनका पालन-पोषण करने वाले एक-दो पीढ़ी पहले अवश्य ही हिंदू या योगी थे। इस तरह कबीर के बारे में जो निर्धारित तथ्य है, उन पर भी तरह-तरह की संभावनायें चिपका दी जाती हैं।

कबीर ने जिस जनपक्षधरता की स्थापना की थी, वह शास्त्र समर्थित नहीं है। आत्मानुभव और आत्मसाक्षात्कार की उपज है। कबीर के यहां आंख बन्दकर श्रद्धा से स्वीकार करने वाला कोई रास्ता ही नहीं है। उन्होंने खुली आंख से, खुले दिमाग से सब कुछ सुना था, जाना था और जितना जहां तक व्यर्थ था उसे निर्भीकता से अस्वीकार कर दिया था। 'सबसे हिलिया सबसे मिलिया सबसे लीजिये नौहा जी, हां हां सबसे कहिया, बसिये अपने गांवाजी' अर्थात 'सबसे हिलो-मिलो, सबसे नया कुछ ले लो, हां-हां सबसे कहो, लेकिन अपने गांव में बसो।' स्पष्ट है कि कबीर ने सब कुछ जानने की बात तो कही है, लेकिन निष्कर्षों के लिए आत्मसाक्षात्कार को ही प्रमाण माना है। कबीर की प्रासंगिकता को समझने के लिए सबसे बड़ा खतरा यही है कि लोग उन्हें अपने गांव में न देखकर बाकी बहुश्रुतियों में देखना चाहते हैं। बहुश्रुतियों का कवच उतारे बिना मूल कबीर तक पहुंचना कठिन है।

सवाल यह है कि आज का आदमी कबीर को क्यों पढ़े? कबीर से क्यों जुड़े? क्या कबीर की सार्थकता एक प्राचीन साहित्यकार के रूप में है? क्या कबीर का साहित्य अलंकार, छन्द और कथा साहित्य का आनन्द पाने के लिए पढ़ना है? क्या कबीर का साहित्य स्त्रीहरण की समस्याओं का लीला चक्र देखने के लिए है? क्या कबीर का साहित्य नर-वानर, राक्षस तक फैले हुए राजतंत्र से उत्तराधिकार की समस्याओं का विवरण

जानने के लिए जरूरी है? क्या कबीर का साहित्य राम की जगह भरत, बालि की जगह सुग्रीव और रावण की जगह विभीषण को राज पद दिलाने वाले कार्यक्रम को जानने के लिए जरूरी है? अगर ऐसा है, तो कबीर का साहित्य भी आनन्द विधायक, मनोरंजक और कथा-जीविका के कार्य में आने वाले स्वान्तः सुखाय साहित्य से ज्यादा कुछ भी नहीं है। लेकिन मेरा ख्याल है कि कबीर का साहित्य ऐसे साहित्य की कोटि में आता ही नहीं। इस अर्थ में उसे साहित्य न कहना ही बेहतर है। जैसा पुराणवादी कवि और आधुनिक काल के कई स्वर्गीय-अस्वर्गीय अध्यापकों ने कहा है। मेरा ख्याल है कि कबीर का साहित्य इसलिए है कि वह जातिवाद और साम्प्रदायिकता जैसे अमानवीय संगठनों के खिलाफ है। कबीर का साहित्य इसलिए है कि वह शक्ति की सीमा तक भारतीय संदर्भ में समाजवादी है। यह साहित्य आदमी के खिलाफ आदमी की हिकारत का दरवाजा बन्द करता है।

('समतावादी सन्त कबीर' से साभार)

धर्म का स्वरूप

लेखक—डॉ. श्री सम्पूर्णानन्दजी

धर्म के विषय में कुछ लिखने के पहले हमको इस शब्द की परिभाषा निश्चित कर लेनी चाहिए। इस समय पण्डित-अपण्डित दोनों ही इसको विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त करते हैं और अब आजकल सरकार ने अराजकता पर अपनी छाप लगाकर लिखने-बोलने वाले का काम और भी कठिन कर दिया है।

पूर्वमीमांसाकार जैमिनि के अनुसार—

'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' वेद जिसकी चोदना-घोषणा करे, वह धर्म है। यह वाक्य निर्णय करने का बोझ मनुष्य से हटाकर वेद पर डाल देता है। जिस आचरण का समर्थन वेद करे, वह धर्म है; जो वेद की दृष्टि से निषिद्ध हो, वह अधर्म है। अधर्म की यह परिभाषा दी तो नहीं है, परंतु अर्थापत्ति से यही निष्पन्न होता है।

इस परिभाषा में अव्याप्तिदोष आता है, कम-से-कम ऐसी आशंका होती है। पृथ्वी पर करोड़ों ऐसे व्यक्ति हैं, जो वेद को प्रमाण नहीं मानते। यदि यह परिभाषा स्वीकार कर ली जाये तो हम ऐसे लोगों के आचरण के सम्बन्ध में कुछ कहने के अधिकार का परित्याग कर देते हैं। उनका आचरण हमारी दृष्टि में न धर्म होगा न अधर्म, या फिर उनके कामों को अपनी कसौटी पर हठात कसेंगे। वह वेद को मानते नहीं, परंतु हम उनके व्यवहार की धर्माधर्मरूपता का वेद के अनुसार निर्णय करेंगे। इससे अर्थविक्लवता और बढ़ेगी। कलह में वृद्धि होगी और हम करोड़ों मनुष्यों को प्रभावित करने तथा उनके आचरण में सुधार करने के अवसर को खो बैठेंगे। यह काम अच्छा है या बुरा—विवाद यहां से हटकर इस मंच पर आ जायेगा कि वेद में सार्वभौम प्रामाणिकता होने की क्षमता है या नहीं। इस प्रश्न का ऐसा उत्तर मिलना, जो सबके लिए सन्तोषजनक हो, बहुत कठिन है।

इस प्रसंग में ईश्वर का नाम लेना भी उलझन को बढ़ाता है। जो काम ईश्वर को सम्मत हो, वह धर्म है—ऐसा कहना भी विवाद को कम नहीं करता। पहले तो ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करना होगा। फिर यदि ईश्वर का होना मान भी लिया जाये तो उसकी इच्छा कैसे जानी जाये? वेद, कुरान और बाइबिल—तीनों ही अपने को ईश्वर के अभिप्राय का अभिव्यंजक बताते हैं; परंतु कई विषयों में आपस में मतभेद है। यह कैसे जानें कि ईश्वर किस बात को पसंद करता है।

ऐसा लगता है कि यदि धर्म के सम्बन्ध में कुछ निश्चय करना है तो यह दायित्व हमको अपने ऊपर ही लेना होगा। इस बोझ को ईश्वर या वेद या किसी अन्य ग्रन्थ पर नहीं डाला जा सकता और हम इस दायित्व को तभी निबाह सकते हैं, जब इस प्रश्न को मनुष्यमात्र की दृष्टि से देखें। यदि किसी एक समुदाय को सामने रखकर विचार किया गया तो वह एकदेशीय और अपूर्ण, सम्भवतः पक्षपातपूर्ण होगा।

पुराने वाङ्मय में एक ऐसी परिभाषा मिलती है, जिसमें प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से किसी सम्प्रदाय-विशेष की चर्चा नहीं मिलती। वैशेषिक दर्शन में कणाद ने कहा है—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

धर्म वह है, जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि होती है।

इस परिभाषा के अतिरिक्त मनु की दी हुई परिभाषा भी इस दृष्टि से निर्दोष है। उनके शब्द हैं—'धारणाद्धर्मः—जो जगत को धारण करता है, वह धर्म है।

जिन दो परिभाषाओं को हमने अपेक्षया निर्दोष माना है, उनमें किसी सम्प्रदाय विशेष की मान्यताओं को आधार नहीं माना गया है और न किसी आध्यात्मिक या धार्मिक सिद्धान्त को पहले से स्वीकार कर लेना आवश्यक ठहराया गया है, परंतु दोनों में ही मतभेद और वैचारिक स्तरपर घोर संघर्ष के लिए पर्याप्त अवकाश है। अभ्युदय की कसौटी क्या है? अभ्युदय किन बातों से होता है? निःश्रेयस क्या है? जगत को कौन-सी बातें धारण करती हैं? जब तक इन बातों पर ऐकमत्य न हो, तब तक परिभाषा के शब्दों को निर्विवाद और सार्वभौम कहना निरर्थक है।

विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि निःश्रेयस का विषय हमको इतने गहरे शास्त्रार्थ में डाल देगा कि मूल प्रश्न का निर्णय करना कठिन हो जायेगा। इस बात को ध्यान में रखने से मनु की दी हुई परिभाषा सबसे अधिक समीचीन लगती है। वह अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोषों से मुक्त है। अतः मैं तो यही मानकर चलता हूं कि **'धारयतीति धर्मः। यो लोकान् धारयति, येन मानवसमाजो धृतः स धर्मः।'**

परिभाषा तो हुई पर अभी इसके शब्दों को अर्थ पहनाना है। समाज का धारण कैसे, किन बातों से हो सकता है—यह निश्चय करना होगा। पहले तो यह देखना चाहिए कि स्वयं मनु की इस सम्बन्ध में क्या राय है? 'धारणाद्धर्म इत्याहुः'—कहते समय उनकी बुद्धि में क्या था? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट शब्दों में मिलता है। उनका **'अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः'** इत्यादि श्लोक प्रसिद्ध है। उन्होंने अहिंसादि दस बातों का उल्लेख कर के इनको 'दशकं धर्मलक्षणम्' बताया है और इनको सार्ववर्णिक—सब वर्णों द्वारा पालनीय कहा है। इससे मिलती-जुलती भाषा में पद्मपुराण के भूमिखण्ड में धर्म के ये दस अंग गिनाये गये हैं—ब्रह्मचर्य, सत्य, तप, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, शान्ति और अस्तेय। मत्स्यपुराण सनातन धर्म के ये मूल गिनाता है—अद्रोह, अलोभ, दम, भूतदया, तप, ब्रह्मचर्य, सत्य, अनुक्रोश, क्षमा और धृति।

इसी प्रकार की सूचियां दूसरे ग्रन्थों में भी मिलेंगी। सब सूचियां पूर्णतः एक-दूसरे से नहीं मिलतीं, परंतु कई बातें सबमें मिलती हैं। अतः ऐसा मानना चाहिए कि जो बातें समानरूप से सभी सूचियों में विद्यमान हैं, वह सभी आचार्यों के मत में धर्म के अंग हैं। शेष के सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है।

जो समानांश है, उसपर दृष्टि डालने से भी कुछ बड़े शिक्षाप्रद और रोचक तथ्य सामने आते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य—ये चार नाम हर सूची में मिलते हैं। अपरिग्रह भी मिलता है, परंतु भिन्न-भिन्न नामों से।

इसके अतिरिक्त शौच, दया, क्षमा के नाम आते हैं। हमको यह भूलना न चाहिए कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को पतंजलि ने योग के अंगों में प्रथम स्थान दिया है और इनके सम्बन्ध में उनका कहना है कि ये पांचों देश-काल-समयाद्यनवच्छिन्न सार्वभौम

महाव्रत हैं अर्थात इनके पालन करने में कहीं किसी अपवाद के लिए स्थान नहीं है। इनका हर जगह और हर समय पालन करना चाहिए, सबके साथ पालन करना चाहिए और सबको पालन करना चाहिए। इनका महत्त्व पतंजलि की दृष्टि में यहां तक है कि उन्होंने इनको स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान की अपेक्षा भी प्राथमिकता दी है और उनका ऐसा करना उचित भी था। ये ऐसे गुण हैं, जिनको ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करनेवाले नास्तिक और आस्तिक सभी एक स्वर से मानते हैं। प्राचीन काल से ही सभी आर्षग्रन्थ इन गुणों का, इनमें भी सर्वोपरि सत्य और अहिंसा का स्तुति गान करते आये हैं। स्वयं वेद का कहना है—

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥

—सत्य की ही विजय होती है, अनृत की नहीं। सत्य से ही वह देवयान मार्ग बिछा हुआ है, जिससे आप्तकाम ऋषि लोग उस स्थान को पहुंचते हैं, जहां सत्य का परम भण्डार है।

मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि।

—किसी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए।

फारसी में एक महात्मा ने कहा है—

रास्ती मुजिबे रज़ाए खुदास्त।
कस न दीदम कि गुम शुद अज रहे रास्त॥

—सच्चाई ईश्वर के प्रसन्न करने का साधन है। मैंने किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखा कि जो सत्य पर चलकर पथभ्रष्ट हो गया हो। और—

मबाश दरपथे आज़ार व हरचे रब्बाही कुन
कि दर ता रीकेत मां गैर अज़ीं गुनाहे नेस्त॥

—किसी को सताओ मत और जो तुम्हारे जी में आये करो, क्योंकि मेरे धर्म में इसके सिवा और कोई पाप नहीं।

अस्तु ऐसा मानना अनुचित न होगा कि जिन बातों की सब लोग प्रशंसा करते हों, जो सबकी दृष्टि में धर्म के अंश और अंग या लक्षण हैं, वे धर्म के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक हैं। और बातें अधर्म नहीं हैं, धर्म के विरुद्ध नहीं हैं, परंतु उनका स्थान गौण है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि मनु आदि जो धर्म के विषय में प्रमाण हैं, किसी विशेष पूजा-पाठ को सार्वभौम धर्मों में नहीं गिनते। एक तो यह विवाद का विषय हो सकता है कि कोई भी ऐसी सत्ता है या नहीं जो उपास्य है। फिर उपासना की प्रक्रिया में भेद हो सकते हैं। इसलिए उपासना को गौण स्थान देना ही चाहिए। जो लोग यह चाहते हैं कि संसार में धर्म का पुनः प्रचार और प्रसार हो, उनको चाहिए कि अहिंसा आदि पांचों यमों के प्रचार और प्रसार के लिए प्रयत्न करें। यदि इनका ह्रास रहा तो कोई पूजा-पाठ धर्म का उद्धार नहीं कर सकती।

आज जगत में अंधेर मचा है। सारे जगत की बात को छोड़ दें। हम अपने देश को लें। पहले से भले ही हम कुछ भौतिकता की ओर बढ़ गये हों, श्रद्धा में कुछ कमी आ गयी हो फिर भी पूजा-पाठ पर पर्याप्त धन व्यय होता है। नये मन्दिर बनते ही जाते हैं। उनमें भोग-पूजा के लिए प्रबन्ध होता ही है। मन्दिरों में गाना-बजाना होता ही रहता है। कण्ठी-माला धारण किये हुए साधु-महात्मा दीख ही पड़ते हैं। गृहस्थ भी किसी-न-किसी प्रकार का जप आदि कर ही लेते हैं। फिर भी भ्रष्टाचार की शिकायत चारों ओर सुन पड़ती है। इसका बड़ा भारी कारण यह है कि हम धर्म के स्वरूप को भूल गये और 'अतस्मिंसतत्'—जो जहां नहीं हैं, उसको वहां ला बैठाया है। धर्म का मूल पूजा-पाठ नहीं हैं, यम के पालन में है; परंतु हम उसे पूजा-पाठ में देखते हैं। यदि कोई व्यक्ति कभी मन्दिर में पूजा करने न जाये, वहां जो भजन आदि या जो गाना होता है, उसमें सम्मिलित न हो तो उसके ऊपर अंगुली उठ सकती है। परंतु यह कोई नहीं देखता कि उसके आचरण में सत्य का क्या स्थान है और उसके व्यवहार में हिंसा कितनी है। जो मन्दिर बनवाता है, उसकी प्रशंसा होती है, परंतु यह कोई नहीं पूछता कि मन्दिर बनवाने के लिए उसके पास धन कहां से आया। भगवान व्यास की यह उक्ति ऐसे अवसरों पर लोग भूल जाते हैं—

नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दुष्करम्।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम्॥

—दूसरे के मर्म का छेदन किये बिना, अकरणीय काम के किये बिना, जिस प्रकार मछुवा एक अपने पेट के लिए सैकड़ों छोटी मछलियों का हनन करता है, उसी प्रकार दूसरों का आघात किये बिना बहुत धन प्राप्त नहीं हो सकता।

व्यासजी भी विष्णु के अवतार माने जाते हैं। परंतु जब कोई विष्णु की पत्थर की मूर्ति और उसके लिए पत्थर का मन्दिर बनवाता है तो व्यासरूपी विष्णु की इस उक्ति को हम हृदय से भुला देते हैं। फिर हमको इस बात की शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं है कि धर्म का ह्रास हो रहा है। धर्म जिन बातों में है, उनको बढ़ावा देना चाहिए। यदि कोई धर्माचरण से च्युत होता है तो उसको इसके लिए दण्ड मिलना चाहिए। सरकार दण्ड दे या न दे, समाज को, ब्राह्मण समुदाय को, समाज के धर्मप्रिय समुदाय को उसे दण्ड देना चाहिए। कुछ नहीं तो उससे खुलकर सम्बन्ध-विच्छेद कर देना चाहिए। यदि हम धर्म से सचमुच प्रेम रखते हैं तो उसका यही उपाय है। यमों से अन्यत्र धर्म को ढूंढ़ना आत्मवंचना है और हमको यह न भूलना चाहिए कि आत्मवंचना परवंचना की पहली सीढ़ी है।

एक बात और, मैंने जो पूजा-पाठ के सम्बन्ध में कहा है, उससे किसी को यह न समझना चाहिए कि मैं उपासना का विरोधी हूं; ऐसा नहीं है। मैं मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिए उपासना को परमावश्यक समझता हूं। परंतु कौन-सी उपासना? इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्यजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

अयं तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम्॥

—योग के द्वारा आत्मसाक्षात्कार करना सबसे बड़ा धर्म है। जो लोग धर्म की चर्चा करते हैं और साथ ही इसकी उपासना को भी धर्म के अंगों में महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं, जैसा कि देना चाहिए, उन्हें इस परम धर्म योग की शरण में आना चाहिए। परम धर्म को छोड़कर क्षुद्र धर्मों की ओर जाना उसी प्रकार का काम होगा जिसको कि तुलसीदासजी ने यों कहा है—

गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

धर्म की एक अचूक कसौटी है। वह हमारे ध्यान में प्रायः बहुत कम आती है। भले ही इस विश्व के सभी प्राणी ब्रह्म से अभिन्न हों, परंतु हमको इस अभेद का प्रायः अनुभव नहीं होता। अपने छोटे-छोटे 'स्व' में प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार भूला रहता है कि उसको उस महान् 'स्व' का पता नहीं लगता है। वह पुरुष बहुत भाग्यवान है, जो समाधि के द्वारा आत्मसाक्षात्कार करता है। कभी-कभी किसी उच्च कोटि के कलाकार या विचारक को भी थोड़ी देर के लिए उस परम सत्य की झलक दीख पड़ जाती है। इसके सिवा एक और अवस्था शुद्ध धार्मिक काम करने के समय सामने आती है। व्यवहार में पति-पत्नी या माता और सन्तति में एक प्रकार का तादात्म्य होता है। इन युगलों में से माता सन्तति के लिए, पत्नी पति के लिए और पति पत्नी के लिए हंसते-हंसते प्राण को न्योछावर कर सकता है, परंतु जहां इस प्रकार दो प्राणियों का तादात्म्य है, वहां युगपत् अन्य सारे प्राणियों से विलगाव है।

माता के लिए उसकी सन्तान सब कुछ है और उसके लिए वह सारे विश्व से लड़ सकती है। यही दशा पति और पत्नी के बीच में होती है। अपना प्रेमपात्र एक ओर और सारा विश्व दूसरी ओर। परंतु जब सचमुच कोई व्यक्ति किसी पूर्णतया धार्मिक काम को करता है—और यह स्मरण रखना चाहिए कि सच्चा धार्मिक काम निश्चय ही निष्काम होगा तो उस समय उसका एक के साथ तादात्म्य तो होता है, परंतु दूसरों के साथ विलगाव नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति डूब रहा हो या जलते घर में आग से घिर गया हो और उस दृश्य को देखकर कोई दूसरा व्यक्ति एकाएक उसको बचाने के लिए पानी या आग में कूद पड़े तो उस समय उसको उस आपन्न व्यक्ति के साथ तादात्म्य होगा, परंतु समूचे विश्व से विलगाव नहीं होगा। उतनी देर के लिए इस नानात्वपूर्ण विश्व का उसके लिए अभाव हो जायेगा और इस प्रकार क्षणभर के लिए उसको अभेद का दर्शन हो जायेगा। उस क्षण में विश्व का वास्तविक मूल रूप उसके सामने आ जायेगा और वह भेदभावों से ऊपर उठ जायेगा। सच्चे धार्मिक कर्म की यह सबसे बड़ी पहचान है।

('कल्याण' के विशेषांक 'धर्मांक' से साभार)

व्यवहार वीथी

मधुर बचन है औषधी

यह बात किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है कि वाणी-बोलने की शक्ति मनुष्य के लिए प्रकृति का कितना सुंदर अनुपम वरदान है और मनुष्य के अंतर-बाह्य, भौतिक-आध्यात्मिक विकास में वाणी का कितना बड़ा योगदान है। यदि मनुष्य के पास वाणी की शक्ति न होती तो मनुष्य आज किस दयनीय स्थिति में जी रहा होता, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। आज जितने भी प्रकार के कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, ग्रंथ-पंथ, शिक्षा-दीक्षा का विकास दिखाई दे रहा है वह सब वाणी के कारण ही है। वाणी द्वारा ही मनुष्य अपने सुख-दुख, विचार-भावना को दूसरों को बताता-समझाता है और दूसरों के सुख-दुख, विचार-भावना को जानता-समझता है।

यह सच है कि वाणी मनुष्य के लिए अनुपम वरदान है, परन्तु यह भी सच है कि इस वरदान का सदुपयोग करना और कब, कहां, किससे, क्या, कितना और कैसे बोलना चाहिए—यह कला बहुत कम लोग ही जानते हैं। ज्यादातर लोग तो इसका दुरुपयोग ही करते हैं और गलत बोलकर स्वयं अपना दुखी-अशांत रहते हैं और दूसरों को भी दुखी-अशांत करते रहते हैं। उचित समय पर, उचित ढंग से उचित बात बोलने पर वाणी औषध का काम करती है वहीं अनुचित समय पर, अनुचित ढंग से तथा अनुचित बात बोलने पर वह मनुष्य के मन में घाव बनाने का काम करती है। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

शब्द संभारे बोलिए, शब्द के हाथ न पाँव।
एक शब्द करे औषधी, एक शब्द करे घाव॥

कौन-सा शब्द औषध का काम करता है और कौन-सा शब्द घाव बना देता है इस संबंध में सद्गुरु कबीर कहते हैं—

मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
श्रवण द्वार ह्वै संचरे, साले सकल शरीर॥

मधुर-मीठी-कोमल वाणी औषध का काम करती है और अन्जान-अपरिचित मनुष्य को भी दोस्त बना देती है। इसके विपरीत कटु-कठोर वाणी कान के रास्ते प्रवेश कर मनुष्य के मन में तीर के समान चुभकर घाव बना देती है तथा अपने कहे जाने वाले लोगों को भी दुश्मन बना देती है। इसलिए बहुत सोच-समझकर तथा संभालकर बोलने की आवश्यकता है। सोच-समझकर बोलने वाले व्यक्ति को बोलने के बाद कभी पश्चाताप नहीं करना पड़ता।

यह सत्य है कि मधुर-मीठी वाणी औषध का काम करने के साथ-साथ दुश्मन को दोस्त बनाने तथा टूटे हुए दिलों को जोड़ने का काम करती है, परन्तु तभी जब वह निश्छल-निर्मल भाव से कही गयी हो। अन्यथा छलपूर्ण ढंग से तथा कलुषित भावपूर्वक कही गयी मधुर-मीठी-कोमल वाणी जुड़े हुए दिलों को तोड़ने का तथा दोस्त को दुश्मन बनाने का काम करती है। कैकयी तथा मंथरा के उदाहरण से इस बात को अच्छी तरह समझा जा सकता है।

कैकयी के मन में पहले राम के लिए अत्यंत स्नेह तथा प्रेम था। वे अपने पुत्र भरत और राम में कोई अंतर नहीं समझती थी। मंथरा द्वारा राम के राजतिलक का समाचार सुनकर वे अत्यंत खुश हो जाती हैं और अपना एक बहुमूल्य आभूषण मंथरा को पुरस्कार स्वरूप दे देती हैं। परंतु मंथरा की छलपूर्ण मधुर-मीठी वाणी को सुनकर अत्यंत प्रिय लगने वाले राम अत्यंत अप्रिय जान पड़ने लगे और उन्होंने उनके लिए चौदह वर्ष का कठोर वनवास मांग लिया। मंथरा की छलपूर्ण मधुर-मीठी वाणी को सुनकर उन्हें पूरी अयोध्या में एकमात्र मंथरा ही हितैषी जान पड़ने लगी और राजा दशरथ सहित पूरे अयोध्यावासी शत्रु जान पड़ने लगे।

इसी प्रकार शकुनि दुर्योधन से सदैव मधुर-मीठी वाणी में बात करते थे, परन्तु उसकी उस मधुर-मीठी वाणी का एकमात्र उद्देश्य दुर्योधन के मन में पाण्डवों के

प्रति शत्रुता बढ़ाना और जहर घोलना ही रहता था। मन में कलुषित भाव रखकर मधुर-मीठी वाणी बोलने वाले लोग विषधर सांप से भी ज्यादा विषधर होते हैं। सांप बड़ा कोमल और सुंदर दिखते हैं, परंतु अंदर विष से भरे होते हैं, इसी प्रकार कुछ लोग बाहर से बड़े कोमल होते हैं, उनका व्यवहार कोमल होता है और वे सामने बड़े कोमल मधुर-मीठी वाणी बोलते हैं, परन्तु उनके कोमल व्यवहार, कोमल स्वभाव तथा कोमल वाणी सबमें भयंकर जहर भरा होता है, क्योंकि उनका कोमल व्यवहार तथा कोमल वाणी छलपूर्ण होते हैं।

हर मनुष्य को मधुर-कोमल-मीठी वाणी ही प्रिय लगती है और वह अपने लिए मधुर-कोमल-मीठी वाणी ही चाहता है, कटु-कठोर वाणी नहीं। इसलिए हर मनुष्य को दूसरों के साथ मधुर-कोमल-वाणी ही बोलना चाहिए, परन्तु उस मधुर-कोमल-मीठी वाणी के पीछे कोई छल, कोई स्वार्थ, कोई कलुषित भाव नहीं होना चाहिए। अन्यथा छल और स्वार्थपूर्ण मधुर मीठी वाणी कटु-कठोर वाणी से ज्यादा घातक तथा गहरा घाव बनाने का काम करेगी।

हर मीठी वस्तु शरीर-स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं होती। इसी प्रकार सब समय तथा सब प्रकार की मीठी वाणी भी सबके लिए हितकर नहीं होती। सब जानते हैं कि बीमारी की अवस्था में मीठी वस्तु खाना प्रायः अहितकर ही होता है। उस समय तो कड़वा काढ़ा ही हितकर तथा रोगनाशक होता है। इसीलिए कहा जाता है—

मीठा सब कोई खात है, विष ह्वै लागे धाय।
नीम न कोई पीवसी, सबै रोग मिट जाय॥

जिस प्रकार बीमारी की अवस्था में मीठी वस्तु की अपेक्षा कड़वा काढ़ा हितकर होता है उसी प्रकार कई परिस्थिति में मीठी-मधुर वाणी की अपेक्षा कड़वी-कटु वाणी ही हितकर होती है। कहा जाता है कि तुलसीदास की पत्नी रत्नावली तुलसीदास को बिना बताये मायके चली गयी तब तुलसीदास को अपनी पत्नी का एक दिन का वियोग भी सहन नहीं हुआ और वे उसी दिन बाढ़ आयी नदी को तैरकर किसी प्रकार रात को पत्नी के एकांत कमरे में पहुंच गये। रत्नावली उनको देखकर आश्चर्यचकित रह गयी और उसने उनको धिक्कारते हुए कहा कि जितना तुम्हारा प्रेम इस शरीर के चाम के प्रति है उतना ही यदि राम के प्रति होता तो तुम्हारा जीवन धन्य हो जाता। पत्नी की इस फटकार और कटु वाणी को सुनकर तुलसीदासजी का पूरा जीवन ही बदल गया और वे एक महान विश्वप्रसिद्ध संत और महाकवि बन गये। और वे तुलसीदास न रहकर गोस्वामी तुलसीदास बन गये।

तुलसीदास को रात के समय अपने मायके के एकांत कमरे में देखकर रत्नावली प्रेम प्रदर्शित करती हुई मीठे-मधुर वचन बोलती तो शायद तुलसीदास को कोई नहीं जानता। किन्तु रत्नावली के कटु-कठोर-कड़वे वचन ने तुलसीदास को महान संत कवि गोस्वामी तुलसीदास बनाने में औषध का काम किया।

उक्त उदाहरण का उद्देश्य किसी के कड़वे-कटु वचन का समर्थन करना नहीं है। यथासंभव हर आदमी को कटु-कठोर-कड़वे वचन बोलने से बचकर मधुर-मीठे वचन ही बोलना चाहिए। परंतु बोलते समय अपने मन में किसी को धोखा देने का, किसी का किसी प्रकार अहित करने का भाव नहीं होना चाहिए। वाणी जो भी बोली जाये स्व-पर, अपने-पराये सबके लिए हितकर एवं सुखप्रद ही बोलना चाहिए और यह तभी संभव है जब अपने मन का भाव शुद्ध होगा। जिसका मन शुद्ध होगा उसकी हर बात सबके लिए हितकर एवं सुखप्रद ही होगी।

बीमारी के समय भले ही कड़वा काढ़ा, कड़वी दवा हितकर होती है, परन्तु हर समय कड़वी चीजें ही खाते रहना कभी किसी के लिए हितकर नहीं हो सकता। इसी प्रकार किसी प्रसंग-परिस्थिति विशेष में कटु-कड़वे वचन भले हितकर हो सकता है, परन्तु उसका उदाहरण देकर हर समय कटु-कठोर-कड़वी बात बोलते रहना कभी किसी के लिए हितकर नहीं होगा। किसी प्रसंग विशेष को छोड़कर सब समय सबके लिए मधुर-मीठी-कोमल वाणी ही प्रियकर एवं हितकर होती है।

कब, क्या, कितना, कैसे और किससे इन सभी बातों पर विचारकर निश्छल मन से शुद्धभाव पूर्वक कही गयी हितकर बातें अमूल्य होती हैं। इनका कोई मूल्य नहीं चुका सकता। कबीर साहेब तो कहते हैं कि यदि कोई बोलने की कला जाने तो शब्द (वाणी-वचन) के समान कोई धन नहीं है। हीरा तो दाम देकर खरीदा जा सकता है, क्योंकि हीरा की कीमत आंकी जा सकती है, किन्तु कोई दाम (मूल्य) देकर शब्द को नहीं खरीद सकता, क्योंकि हितकर वाणी की कोई कीमत नहीं आंकी जा सकती, वह अमूल्य होती है। बोलने की सर्वोत्तम कला यह है कि बोलने के पहले अपने हृदय रूपी तराजू पर तौलकर देख लिया जाये कि वह समय और पात्र के अनुकूल है या नहीं और जब लगे कि बात समय-पात्र के सर्वथा अनुकूल है तब उसे मधुरतापूर्वक मुख से बाहर निकाले। मूल वचन इस प्रकार है—

शब्द बराबर धन नहीं, जो कोई जाने बोल।
हीरा तो दामों मिले, शब्द के मोल न तोल॥
बोल तो अमोल है, जो कोई बोले जान।
हिये तराजू तौलिके, तब मुख बाहर आन॥

किसी बात को हृदय-तराजू पर तौलने का अर्थ यह भी है कि जो बात मैं बोलने जा रहा हूं, वही बात सामने वाला व्यक्ति या कोई अन्य व्यक्ति मुझसे कहेगा तो मैं क्या महसूस करूंगा—सुख या दुख, सम्मान या अपमान। यदि वह बात सुनकर मुझे खुशी महसूस होगी तो समझना कि यह बात नि:संकोच कही या बोली जा सकती है और यदि उस बात को सुनकर मुझे दुख-महसूस होगा तो समझना कि वह बात किसी से कहने लायक नहीं है। मौन रहना ही अपने-पराये के लिए हितकर होगा।

मूल प्रसंग यह है कि हर मनुष्य को कटु-कठोर-कड़वे वचन न बोलकर मधुर-मीठे वचन ही बोलना चाहिए, क्योंकि मधुर-मीठे वचन औषध का काम करते हैं और कटु-कठोर-कड़वे वचन तीर के समान चुभकर मनुष्य के मन-हृदय में घाव बना देते हैं। परन्तु यह भी ध्यान रखना होगा हि मधुर-मीठे वचन औषध का काम तभी करते हैं जब वे शुद्धभाव रखकर निश्छल मन से कहे गये हों अन्यथा कलुषित भाव रखकर कहे गये मधुर-मीठे वचन कटु-कठोर वचन से ज्यादा गहरा घाव बना देते हैं।

बाहर की पढ़ाई-लिखाई बढ़ने के साथ-साथ आजकल लोगों में सफेदपोशी और चालाकी भी बहुत बढ़ गयी है। अनेक लोग चिकनी-चुपड़ी मीठी बात कह कर लोगों को ठगने एवं अपना स्वार्थ साधने में ही अपनी चतुराई समझने लगे हैं। ऐसी स्थिति में किसी की चिकनी-चुपड़ी मीठी-मधुर वाणी सुनकर एकाएक उसको अपना परम हितैषी नहीं मान लेना चाहिए और न किसी की कटु-कठोर-कड़वी तथा अप्रिय लगने वाली बात सुनकर एकाएक उसको अपना दुश्मन-विरोधी मान लेना चाहिए। स्थिति इसके सर्वथा विपरीत भी हो सकती है।

सार यह है कि समय, पात्र और योग्यता-आवश्यकता देखकर कड़वी-मीठी जो भी बात बोली जाये अपने-पराये सबके लिए हितकर और सुखप्रद ही बोली जाये। किसी को मिठाई भले न खिला सकें, सबके साथ हितकर और सुखप्रद मीठी बात तो बोल ही सकते हैं। दुनिया में इतना गरीब कोई नहीं है कि वह किसी से मधुर-मीठी एवं हितकर बात भी न बोल सके तो इतना धनवान भी कोई नहीं है कि जो यह कह सके कि मुझे किसी के मधुर-मीठी और हितकर वाणी की आवश्यकता नहीं है। मेरे पास तो इसका अकूत खजाना भरा है।

—धर्मेन्द्र दास

जिह्वा में अमृत बसे, जो कोई जाने बोल।
बिष वासुकी का उतरे, जिह्वा तने हिलोल॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर का घाट।
अन्तर घट की करनी, निकरे मुख की बाट॥
मुख की मीठी जो कहे, हृदया है मति आन।
कहहिं कबीर ता लोगन से, तैसेहिं राम सयान॥

चमत्कारों का चिन्तन विरोधी खेल

लेखक—श्री अखिलेश मिश्र

आस्था का प्रश्न उठाते ही चमत्कार, शकुन, फलाफल से सम्बन्धित प्रपंच उभरते हैं। ऐसे अवसरों पर बहुधा अंधविश्वासों के पक्ष में तथाकथित वैज्ञानिक तर्कों की बौछार भी आरम्भ हो जाती है। अभी हाल में फलित ज्योतिष और सामुद्रिक द्वारा भविष्य और फलाफल निर्णय के विरोध में एक लेख छपा था। लेखक ने बहुत पुष्ट तर्क देकर इन दोनों को ठग विद्या कहा था। इसके बाद समाचार पत्र में विवाद शुरू हो गया। सम्पादक के नाम पत्र छपने लगे। कुछ पत्र विचित्र छपे। चन्द्रमा के कारण ज्वार-भाटा आता है। हमारे शरीरों में भी जल तत्त्व है। तब चन्द्रमा का वैसा ही प्रभाव हमारे शरीरों पर क्यों नहीं पड़ेगा। उन्माद आदि प्रभाव होते भी हैं। ऐसे ही प्रभाव अन्य ग्रहों व उपग्रहों के होंगे। जब शरीर का रोम-रोम सम्पूर्ण ब्रह्मांडीय बलों के प्रभाव, त्वचा स्पर्श के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुंचाता है तब हस्त रेखा या मस्तक की रेखा प्रभावहीन क्यों मानी जाये। इसी पत्र में झाड़-फूंक, टोना-टोटका, गंडा-ताबीज और मंत्रजाप आदि के पक्ष में भी प्रकाश-भौतिकी, रत्न-चिकित्सा, रंग-मीमांसा और नाद-प्रभाव के सिद्धान्त भी बघारे गये थे।

यह बड़ी हास्यास्पद स्थिति है। पत्र लेखक की योग्यता के आगे नतमस्तक हुआ जा सकता है, परन्तु यह योग्यता भी ठग विद्या को शुभ सिद्ध नहीं कर पाती। राहु और केतु अनुपस्थित है, छाया है। प्रभाव उपस्थित का होगा, अनुपस्थित का कहां से होगा? राशि 30 अंश के कोण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जो अंतरिक्षीय कोणीय दूरी को नापने में सहायक होती है। उसका क्या फलाफल हो सकता है? धूमकेतु का नाम लेकर भय पैदा करने का क्या न्याय है? इतना ही तो कि हजारों वर्षों से यह बात दोहरायी गयी है और कभी जांची-परखी नहीं गयी। ऐसे तो कुसंयोग ढूंढ़े ही जा सकते हैं जो किसी भी मानवीय क्रिया के विरुद्ध लोकापवाद बन जाये। प्रश्न यह है कि इस प्रकार की वैचारिक-मीमांसा की उपयोगिता अपनी जगह है लेकिन क्या उस उपयोगिता को अंधविश्वासों का झण्डा उठाने वाले स्वयं भी स्वीकार करते हैं। जो पुजापा-स्वार्थ वैज्ञानिक रीतिबद्धता और तर्कसंगतता को स्वयं ही स्वीकार नहीं करता, उसके पक्ष में विज्ञान का अस्त्र जानबूझकर क्यों गोठिल किया जा रहा है। सच्ची बात यह है कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड में प्रत्येक बिन्दु पर अनगिनती बलों का संतुलन है। प्रत्येक अणु-परमाणु क्रियामय है। ये सब क्रियाएं, पुनरावृत्तिमूलक हैं, नियमबद्ध हैं। भले ही उन नियमों को पूरी गहरायी तक अभी मनुष्य न समझ पाया हो लेकिन सत्य यह है वैसी ही विशिष्ट परिस्थिति में वैसा ही बल-संतुलन होने पर वही क्रिया और वही परिणाम बार-बार अवश्य होगा। नियम को पूरी तरह न समझने की कमजोरियां दूर करने का काम विज्ञान के सुपूर्द है और विज्ञान क्रमशः इन कमजोरियों से जूझते हुए अंशतः ज्ञानराशि को बढ़ाता चल रहा है। विज्ञान की ये उपलब्धियां प्रविधि के माध्यम से मनुष्य जीवन के लिए उपयोगी बनती जा रही हैं और इन्हीं के द्वारा कलाएं निरन्तर निखरती हुई मानवीय समरसता को पुष्ट करती चली जा रही हैं।

बुनियादी मान्यता यह है कि प्रकृति तक के सब ज्ञात-अज्ञात नियम सृष्टि के आदि से अब तक अपरिवर्तित हैं और रहेंगे। प्राकृतिक क्रियाएं भी पुनरावृत्तिमूलक रहेंगी और व्यक्तिनिरपेक्ष होंगी। सेब न्यूटन के लिए ही नहीं जुम्मन लिए भी नीचे ही गिरेगा। बिजली मैक्सवेल के लिए ही नहीं हमारे लिए भी वैसी ही उपयोगी होगी। ऐसी स्थिति में चमत्कार केवल नासमझी के द्योतक या खोज के प्रेरक तो सकते हैं, उनका कोई स्थायी महत्त्व नहीं हो सकता। कोई चमत्कारी व्यक्ति न हुआ है न हो सकता है। मदारी या जादूगर हाथ की सफाई दिखा सकते हैं। कोई बाबा

भभूत का चमत्कार दिखाकर जनता को मोहित कर सकते हैं, पर वे सब हाथ की सफाई दिखाते हैं, आंखों में धूल झोंकते हैं। नासमझी की गहनता से चमत्कारों का पोषण होता है। अधिकांश चमत्कारी चर्चा प्लैयिच्यूड है, उसे जांचने-परखने और पांस्चुलेट के स्तर तक पहुंचाने को कोई चमत्कार प्रचारक तैयार नहीं होता। एक बात और। जो बाबाजी हाथ उठाकर मुट्ठी में घड़ी पैदा कर लेते हैं उनके अपने हाथ में बाजार की खरीदी हुई घड़ी बंधी होती है और उस घड़ी की मरम्मत भभूत या मंत्र द्वारा नहीं बाजार के घड़ीसाज द्वारा होती है। बाबाजी का चश्मा, नकली दांत, खड़ाऊं, उनकी जीप, टेलीफोन, उनकी छपी हुई सजिल्द रामायण सभी कुछ बाजार की देन है जिन पर भभूत का जोर नहीं चलता। किसी के हाथ या शरीर की गतियां बांध देने का दावा करने वाले मंत्र-महारथी अरब-इस्राइल युद्ध में अपनी विद्या आजमाकर युद्ध रोक नहीं पाते। ये सब भीख मांगने के विलक्षण ढंग हो सकते हैं। ये ढंग गाय-भैंस चराने वालों को मुग्ध करते हैं। इन विद्याओं के आचार्य न तो अपनी विद्या सिखाने के लिए स्कूल खोलेंगे, न घड़ी के कारखानों की जरूरत समाप्त करेंगे। उनकी सिद्धि सिर्फ उनकी है, किसी और के लिए, वह बेकार है। वह न प्रविधि में जाएगी, न कला में जाएगी। नाम लेंगे चमत्कार का, लेकिन गंडा-ताबीज और झाड़-फूंक के साथ ऐसा खान-पान और रहन-सहन बता देंगे जो अभीष्ट लाभप्रद हो। चमत्कार व फलाफल के पीछे निर्विकार ठग विद्या और व्यावसायिक प्रपंच होता है। यदि इस भविष्यफल में ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति आदि का वैज्ञानिक प्रभाव आंशिक भी होता तो पूजा-पाठ या व्रत आदि से क्रूर ग्रह का प्रभाव मिटता कैसे? संस्कृत के विद्वान जानते होंगे कि उनके न्यायशास्त्र में एक सर्प मूषक न्याय है। इसे समझाने के लिए एक कहानी कही गयी है।

किसी घर में एक बांस का पिटारा धरा था। आटा लेपकर उसे बन्द किया गया था। वह पिटारा बहुत कलापूर्ण ढंग से रंगबिरंगा था। भीतर एक सांप बन्द था जो बहुत देर से भूखा-प्यासा था। बाहर एक चूहा आया। चूहे ने ऊपर-नीचे अगल-बगल मुआयना करके समझा कि इस पिटारे में जरूर कुछ मिठाई-पकवान आदि हैं। चूहे ने पिटारे में छेद किया और उसमें घुस गया। सांप को दो लाभ हुए। उसे तुरन्त भोजन मिल गया और बाहर निकलने का मार्ग भी मिल गया और चूहे को क्या मिला? श्रम का परिणाम यातनापूर्ण मौत। किसकी करनी का किसको क्या फल? सुनने वालों को इसमें चमत्कार दिखाई देगा या फिर ऊपरवाले की मर्जी। इस न्याय की विशेषता ही यही है कि आरम्भ से अंत तक सब कुछ संयोगवश हुआ। इसमें कुछ भी पुनरावृत्तिमूलक नहीं है। घटना पर अविश्वास करने का कोई औचित्य नहीं, लेकिन संयोग को भाग्य से जोड़ने का भी कोई न्याय नहीं होगा। सबके लिए कुछ न कुछ अविदित तत्त्व था, उसी नासमझी के कारण 'चमत्कार' हुआ। घटना तो हुई ही, परन्तु इस घटना से किसी प्राकृतिक नियम अथवा सूत्र का पता नहीं लगाया जा सकता। अतिरंजना की जा सकती है और भगवद्इच्छा के साथ अगर स्थान-समय आदि को जोड़ दिया जाये तो शकुन-अपशकुन और फलाफल का मामला भी बनता है जिसे जांचने-परखने की कोई सुविधा नहीं होगी। अंधविश्वास के सहारे कुछ करने-न करने की हिदायत भी हो सकती है और बुढ़िया-पुराण तथा रूढ़िशास्त्र के कुछ पन्ने जुड़ सकते हैं। हमारे शकुन-विज्ञान और दिवशूल में बहुधा अतीत का कोई सर्पमूषक न्याय है। संयोगी सत्य का साधारणीकरण करने से सब वैज्ञानिक सत्य नहीं हो जाता।

एक और न्याय है। घुणाक्षर न्याय। पहले कहानी जान लीजिए। किताब या काठ के फर्नीचर और पेड़ आदि को काटता हुआ घुन भीतर घुस जाता है। यह सबको ज्ञात है। किसी लकड़ी में घुन लगा और घुन के काटने से ओम, राम, त्रिपुण्ड, तिलक या त्रिशूल जैसा बन गया। कोई अन्य पूजारूप भी बन सकता है। इसी प्रकार आग में जलने के बाद भी लकड़ी, पत्ती या मनुष्य की लाश के अवशिष्ट अंश को कोई पूज्यरूप भी मिल

सकता है। इस आधार पर घुन को, काठ को या जलने से बची हुई चीज को पूर्वजन्म का कोई पवित्रात्मा प्रचारित करके पूजा, चढ़ावा, जुलूस, जलसा आदि का प्रपंच आरम्भ करना बहुत आसान है। ऐसी कहानियां तेजी से दूर-दूर तक फैलती हैं। हर सुनाने वाला कुछ क्षेपक जोड़ता चलता है। विज्ञान से इसका समाधान पूछा जाता है। पुनरावृत्ति होती नहीं, इसलिए जांच-परख और नियम परिज्ञान की गुंजायश नहीं होती। विज्ञान के विरुद्ध अश्रद्धा उत्पन्न करने के लिए इस प्रकार एक तर्क और मिल जाता है। भूत-प्रेत और चुड़ैल से भेंट, पूर्वजन्म की स्मृतियां, भिन्न योनियों के परस्पर प्रेम, सांप-बिच्छू से मनुष्य के विवाह और पातिव्रत आदि का निर्वाह, आकस्मिक अकारण आग लगे, पानी बरसे, पथराव हो, कब्र-चौरा आदि की अनेक विस्मयप्रद कथाएं सुनी जायें—यही सब चमत्कार कहा जाता है। घटना अकेली, अनोखी होती है, दुहाराई जा नहीं सकती। विधि न समझी जा सकती है न समझाई जा सकती है। आस्था, विश्वास, भक्ति तो उभर सकती है लेकिन प्रविधि को उससे कुछ न मिलेगा। यह घटनाएं शत-प्रतिशत सत्य भी हों तो उनके आधार पर विज्ञान को असमर्थ या व्यर्थ बताना न्यायसंगत नहीं है। वे विज्ञान की अध्ययन-परिधि में नहीं आतीं। उनकी चर्चा करके विज्ञान की निन्दा करने वाले शायद विज्ञान का अर्थ नहीं जानते।

अक्सर कहा जाता है कि विज्ञान व्यर्थ है, वह कुछ करता-धरता नहीं। आज तक मृत्यु पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। यों इन प्रचारकों को लाउडस्पीकर और मुद्रणालय विज्ञान ही देता है, लेकिन बेहयाई का इलाज हकीम लुकमान के पास नहीं है। प्रचारकों का तर्क मूर्खतापूर्ण है। सम्पूर्ण ब्रह्मांड में जो प्राकृतिक क्रियाएं होती हैं उन्हीं को बार-बार देखकर विज्ञान स्थिति, क्रिया और परिणाम की संगति खोजता है, जांचता है और तब उपयोग के लिए मनुष्य के हवाले करता है। प्रकृति में जन्म होते हैं। उन्हें देखकर उनके नियम पहचानकर कृत्रिम जीन रचना तक हो गयी, परखनली शिशु पैदा हुआ, आपरेशन द्वारा प्रसव होने लगे। मौतें होती हैं, तरह-तरह से होती हैं। उन्हीं से सीखकर हत्या के हजार तरीके सीख लिये गये। अमरत्व प्रकृति में है नहीं तो उसकी विधि विज्ञान कहां से सीखे।

चिन्तन, स्मृति, प्राकलन आदि क्रियाओं का अध्ययन मनुष्य को कंप्यूटर और राइटर तक पहुंच चुका है। लेकिन विज्ञान द्वेषियों को शिकायत है कि विज्ञान उड़नतश्तरी के बारे में कुछ क्यों नहीं बताता? इसलिए नहीं बताता कि उड़नतश्तरी कभी-कभी किसी को दिखाई दे जाने वाली सुनी-सुनाई घटना रह जाती है। कोई उड़नतश्तरी वैज्ञानिक दूरबीन के सामने आयी नहीं, उसे जांचने का विज्ञान को अवसर नहीं मिला। भूत-प्रेत, चुड़ैल और उनके करतब भी वैज्ञानिक शोध की जांच परिधि के भीतर कभी नहीं आये न लाये जाते हैं। विज्ञान उनकी जांच करने में असमर्थ है।

एक तर्क और दिया जाता है फलां बड़े वैज्ञानिक ने अमुक चमत्कार की तस्दीक कर दी है। एक बड़े डाक्टर साहब ने पुनर्जन्म में आस्था व्यक्त कर दी है। अजी साहब, भूत-प्रेत की बात तो अब वैज्ञानिक भी मानते हैं। ऐसे तर्क क्या सिद्ध करते हैं? देहाती बुढ़िया बात-बात में शास्त्रों का हवाला देती है जबकि वह शास्त्रों का नाम भी नहीं गिना सकती। अध्यात्म और अंधविश्वास के पक्ष में भी वेदशास्त्र की निराधार बात करने वाले बहुत हैं। पहले तो इन तर्कों से यह सिद्ध हुआ कि सामान्य जन में विज्ञान की मान्यता बढ़ी है। विज्ञान ने धर्मशास्त्र जैसा महत्त्व प्राप्त कर लिया है। अंधविश्वास को भी अब विज्ञान का सहारा चाहिए। महंत और मौलवी की बैसाखी अब काम शायद नहीं दे रही है।

एक और विचारणीय बात है कि अन्ततः वैज्ञानिक भी मनुष्य है। किसी परिवार में पैदा हुआ है। उस पर रूढ़ियों, अंधविश्वासों का प्रभाव जन्मकाल से अब तक पड़ा है। उससे मुक्त होना आसान नहीं है। इस प्रकार के हर अंधविश्वास को परखने की आशा नहीं की जा सकती है। वह किसी सीमित क्षेत्र में विशिष्ट दिशा में कुछ खास विषयों का शोधकर्ता वैज्ञानिक है। समाज की सब

रूढ़ियों से वह उलझने लगेगा तो पथभ्रष्ट हो जाएगा। जिन विशिष्ट विषयों का वह वैज्ञानिक है उनमें भी वह चौबीस घण्टे उपकरणों तथा शोधकों की मानसिकता से घिरा नहीं रहता। व्यक्ति वैज्ञानिक हुआ करे, उसकी हर क्रिया वैज्ञानिक नहीं होती। यह बात अन्य दिशाओं में भी सही है। मार्क्स की हर क्रिया मार्क्सवादी नहीं थी, गांधी की हर क्रिया गांधीवादी नहीं थी। वैज्ञानिक की राय, जिस विषय में वह अधिकारी हो उस विषय में भी प्रामाणिक तभी मानी जाएगी, जब जांच-परख के उपरान्त परीक्षण के पूरे विवरण के साथ प्रस्तुत की गयी हो ताकि विश्व भर में उसे दोहरा कर परखा जा सके। आइन्स्टीन प्रयोगशाला के भीतर वैज्ञानिक हैं। अन्यत्र वह विज्ञान से दूर भी हो सकते हैं। राजनीति, संगीत, पुर्नजन्म आदि के बारे में किसी गोष्ठी या जनसभा में उनकी राय वैज्ञानिक हो सकती है लेकिन अवैज्ञानिक भी हो सकती है। वैज्ञानिकता को अंधविश्वास की छोर तक पहुंचाने वाले ऐसे तर्क वैज्ञानिक तर्क नहीं हैं हास्यास्पद भले ही हों।

चुनाव, सरकार निर्माण, राजनीतिक फेरबदल आदि में भी शकुन, फलित ज्योतिष, टोना-टोटका आदि ने पांव पसारना इन दिनों कुछ अधिक शुरू कर दिया है। यह सब होता पहले भी था, लेकिन पहले इन्हें स्वस्थ तौर-तरीकों में नहीं गिना जाता था। झूठी आस्था की प्रदर्शनी भी लाभप्रद होने लगी। कुछ कलाएं मूर्खमोहिनी होती हैं। राजनीति में दारू-नशों की भूमिका विवादास्पद हो, लेकिन है। धर्म भी एक नशा है, आंखों पर पट्टी बांधने में मददगार है। पूजा-पाठ, मनौती और शकुन के चमत्कारपूर्ण लाभ-हानि भी राजनीति में अक्सर बताये जाने लगे हैं। संयोगी सत्य वैसे हो सकते हैं पर वह सब चमत्कार उसी सीमा तक है जहां तक उनकी जांच नहीं हो पाती। कल तक जो चमत्कार था वह अगर आज जांच परिधि में आ जाये और उस पर निष्कर्ष निकल आये तब वह चमत्कार नहीं रहेगा। तब चमत्कार प्रेमी विज्ञानद्वेषी नये चमत्कार खोजेंगे। बादलों की बिजली कभी चमत्कार थी अब ड्राइंगरूम की ट्यूबलाइट चमत्कार नहीं है। यह भी तय है कि चमत्कार, टोना-टोटका आदि वैज्ञानिक जांच की परिधि में आने के बाद ही मानव जाति के लिए व्यापक रूप में उपयोगी बनते हैं। तभी वह प्रविधि के हवाले होते हैं। जब तक उनका परीक्षण न हो तब तक वे केवल ठगों की सम्पदा हैं। उनसे दिलासा मिल सकती है। लेकिन उनके पक्ष में विश्वास, निष्ठा, आस्था, श्रद्धा, भक्ति आदि शब्दों का प्रयोग इन शब्दों का अर्थ बिगाड़ना है, क्योंकि विद्या और शिक्षा से उनका इस संदर्भ में स्पर्श नहीं हो सकता। मनोरंजन के रूप में बाजीगरी भी संस्कृति में दाखिल हो सकती है लेकिन लोभ या भय पैदा करेगी तो उसे मानवद्रोही ही माना जाएगा। मानवीय उपलब्धियों की गरिमा घटाने वाले तर्क सनातनकाल में भी अधर्म ही माने गये हैं। उन्हीं को कुतर्क व पातक भी कहा गया है। चमत्कार के नाम पर ठगी का धन्धा चलाने वाले उस दिशा में कोई नये या अजूबा नहीं हैं।

(साभार : राष्ट्रीय सहारा—30 वर्ष पूर्व)

सहजै रहना भेद न करना, बोलिबा मीठी बानी।
अगिला अगिनी होइबा अवधू, तब होइबा तुम पानी॥

—गोरखबानी

हरि से जन तू हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत हैं, हरिजन हरि ही देत॥

—रहीम

न कुछ था तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता।
डुबाया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता॥

—गालिब

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, जामें दो न समाहिं॥

आत्म तत्त्व जाना नहीं, कोटिक कथे जु ज्ञान।
तारे तिमिर न भागहीं, जब लग उगै न भान॥

—सद्गुरु कबीर

परमार्थ पथ

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले

बीती हुई बातों से वैराग्य की प्रेरणा लेना उत्तम है, किंतु बीती बातों की प्रतिक्रिया में सोचते रहना मानसिक नरक है। बीती हुई घटना तो मरी हुई है वह सामने आने वाली नहीं है। फिर उस मृत को मन में जिलाये रखना सड़े मुरदों में पड़ सड़ते रहने के अतिरिक्त क्या है? भविष्य अदृश्य है, उसकी कल्पना का तूदा बांधना अज्ञान है, व्यर्थ का सपना देखना है। दुनिया की वस्तुओं, व्यक्तियों और परिस्थितियों को लेकर ही अनुकूल और प्रतिकूल मानसिक उद्वेग होते हैं और वह सब क्षणिक है। न किसी प्राणी से तुम्हारा स्थिर संबंध है, न किसी पदार्थ से और न किसी परिस्थिति से। असंगता, अद्वैत, कैवल्य, निराधार, बक़ा, शेष ही अपना स्वत्व है, फिर संबंध को लेकर उत्तेजित होने का क्या प्रयोजन? अतएव पूर्ण शांत रहो।

* * *

यह जीवन है, जिसका कुछ भी भरोसा नहीं, वस्तुतः सभी निर्मित वस्तुएं बिखरने वाली होती हैं। कारण-कार्य का ही तो हमारे चारों तरफ प्रवाह चल रहा है। जड़तत्त्व कारण हैं और उनसे निर्मित वस्तुएं कार्य। इस जड़-दृश्य में मेरा कुछ नहीं है। मेरा तो आत्म-अस्तित्व मात्र है।

* * *

अनात्म-चिन्तन से जड़-दृश्यों में अहंता-ममता बनती है जो बंधन बनती है। इसी से दुख पैदा होता है। अनात्म-चिन्तन त्यागकर आत्म-चिन्तन करना चाहिए। अंतिम स्थिति है कुछ न सोचना क्योंकि आत्म-चिन्तन में मन उपस्थित रहता है। कुछ न सोचने से मन का पूर्ण विलय रहता है जो निर्विकल्प दशा है और यही आध्यात्मिक साधना की उच्चतम दशा है। गाढ़ी नींद में मन लीन रहता है, इसलिए कोई चिन्तन नहीं रहता, राग-द्वेष नहीं रहते। जाग्रत होते ही मन उपस्थित होता है और दुर्बल साधक के हृदय में मन राग-द्वेष का जाल बुनने लगता है। सब समय सावधान रहने वाला साधक अपने मन को राग-द्वेष से बचाये रखता है और अततः निर्विकल्प होकर स्वतः शांत रहता है।

* * *

अवध क्षेत्र में कहावत चलती है, "कच्छुट और बच्छुट व्यर्थ आदमी होता है।" कच्छुट-काछ-छुट—इंद्रियलंपट है और बच्छुट-बात-छुट—जिसकी बात की कोई मर्यादा नहीं है वह आदमी है। ऐसा आदमी न आत्मसंतोष पाता है और न समाज-प्रतिष्ठा पाता है। जो इंद्रियसयंमी है और जो विचारपूर्ण बोलता है, वह आत्मसंतोष पाता है और समाज में प्रतिष्ठा पाता है। कुल मिलाकर अपने काया-गढ़ पर विजयी सच्चा मनुष्य है और सुखी है। मनुष्य को चाहिए कि अपने को धन, पद, प्रतिष्ठा की इच्छा में न खो दे, अपितु निर्वाह के लिए व्यवहार करते हुए निरंतर अपने पर नियंत्रण करने का काम करे। भीतर के युद्ध में जो मनुष्य मनोविकार-शत्रुओं पर विजयी हो जाता है, वह परमानंद पाता है।

* * *

अंत को देखो जो प्रपंचशून्य है। जीवन में हानि है, लाभ है, सम्मान है, अपमान है, यश है, अपयश है, मिलन है, बिछुड़न है, मोह है, वैर है, कलह है, कल्पना है और बहुत सारा द्वंद्व है; किंतु शरीरांत होने पर यह सब शून्य हो जायेगा। संसार ही का भान नहीं रहेगा। विवेकवान हर क्षण अंत को देखता है, इसलिए वह कलह को नहीं देखता। उसकी कोई निंदा कर दे, परंतु वह किसी की निंदा नहीं करता। विवेकवान सब तरफ से आये हुए द्वंद्व को निर्विकारभाव से सहता है और किसी से छेड़खानी नहीं करता। जिसे विदेहभाव में रहना प्रिय है, वह किसी बात को लेकर उत्तेजित नहीं होता। उत्तेजना बालकपन है। सहन का अभ्यास कर्म-बंधनों के नाश का रास्ता है जिससे परम शांति है।

* * *

जिस संसार में तुम रह रहे हो, उसमें किसी प्राणी और पदार्थ से तुम्हारा स्थिर संबंध नहीं है। यह चाम का पुतला शरीर क्षणिक है और इससे जुड़े प्राणी, पदार्थ तथा परिस्थितियों का संबंध क्षणिक है। इसलिए किसी संबंध को लेकर राग या द्वेष करना घोर अविवेक होगा। तुम्हारे साथ कौन है? बचपन से आज तक कितने संबंध हुए और मिटे, इसका लेखा-जोखा करना कठिन है। इसलिए मिलने वाले जड़-दृश्यों की परवाह छोड़कर अनमिल आत्मा का ही विचार करो। समाधि का गहरा अभ्यास करो और निर्विकल्प हो जाओ। मन से सोच-सोच कर संबंध का रोग बना रखे हो। मन को शांत कर देने पर सारा संबंध कट जाता है, और पूर्ण असंबंध मोक्ष है।

* * *

जिन मिलने वाले जड़-दृश्यों को लेकर राग-द्वेष, कलह और संताप होते हैं वे अनात्म, अनित्य और छूट जाने वाले रहते हैं। इसलिए बोधवान दुनियवी चीजों को लेकर अपने मन को मलिन नहीं करते। आत्म-अस्तित्व सब समय अपने साथ है। हम मिलने-बिछुड़ने वाली वस्तुओं में मन क्यों अटकाएं जो सदा के लिए छूटने वाली हैं? हम अपने मन को आत्म-अस्तित्व में रमायें जो सदा प्राप्त है। दृश्य का अभाव कर आत्मा में स्थित व्यक्ति अगाध अमृत में रहता है। महा शांति, अनंत सुख, परमानंद, परमसंतोष स्वरूपस्थिति में है। स्वस्वरूप के अलावा सारी उपलब्धि कूड़ा-कबाड़ है, धूल-माटी है।

* * *

शीघ्र पचने वाला खाद्य खाओ, कड़ी भूख लगने पर खाओ और कम खाओ। इस कूड़ेदान संसार की कोई इच्छा न रखो। बस, जीवन्मुक्त होकर कालक्षेप करो। तुम्हारे पास और दूर वाले तुम्हें क्या समझते हैं इसकी थोड़ी भी चिंता न करो। संसार का संबंध झूठा है, क्योंकि क्षणभंगुर है। इस जीवन में जितने प्राणी और पदार्थों का संबंध हुआ है, उनमें से अधिकतम खो चुके हैं। जो संबंध में हैं उनका भी खो जाना पक्का है? जिस शरीर में तुम बैठे हो, यह आज-कल में सदा के लिए खो जायेगा। संबंध मात्र नकली है। आत्मा तो असंग है, उपाधिहीन है, अद्वैत है, अकेला है, कैवल्य है, इसी सच्चाई में सदैव जीने का अभ्यास करो और शोक-मोह से मुक्त रहो।

* * *

एक ही लक्ष्य है, एक ही आनंद है, एक ही उपलब्धि है, एक ही गंतव्य है, एक ही धन है, एक ही स्वत्व है, एक ही उत्साह है, एक ही प्राप्तव्य है स्वरूपस्थिति। मेरा अक्षय भवन, आनंद धाम, पारख धाम, धुर धाम, ब्रह्मधाम, साकेत धाम, स्वर्गधाम, जन्नत, मोक्ष धाम है स्वरूपस्थिति। स्वस्वरूप ही मेरा अभिन्न, नित्य, शाश्वत पद है। संसार का सारा धाम मिलकर छूट जाता है, परंतु स्वस्वरूप कभी छूट नहीं सकता। अतएव अनात्म में स्थित होने से द्वंद्व है। छूटने वाली वस्तु में राग दुख देता है। कभी न छूटने वाले स्वरूप में स्थित होने से निर्भय-पद की प्राप्ति है। स्वरूपज्ञान हो जाने पर भय कैसा?

* * *

स्मरण का विषय मिलकर छूट जाने वाले अनात्म, जड़ तथा अनित्य वस्तुएं नहीं होना चाहिए, अपितु नित्य आत्मा होना चाहिए। स्वस्वरूप ही स्मरण का विषय होना चाहिए। दुर्बल विवेक के कारण मन बीती हुई घटनाओं की कल्पना में ही उलझा रहता है, और ऐसी स्थिति में लगता है कि मन भूत की कल्पनाओं को छोड़ नहीं सकता। परंतु उसी साधक के बोध-वैराग्य के निरंतर अभ्यास से जब मन मंज जाता है, तब भूत-भविष्य की कल्पनाएं छूटकर स्वरूप-विचार ही में मन रमता है। सदैव स्वरूप-विचार एवं स्वरूपस्थिति में रहना ही जीवन्मुक्ति की दशा है। निरंतर के विवेक से जड़-दृश्य का मोह सर्वथा नष्ट हो जाता है और स्वरूपस्थिति की निरंतरता बनी रहती है।

❑

परमार्थ की रीढ़ है व्यवहार

मानव जीवन के दो पक्ष हैं, दो पहलू हैं—एक व्यवहार और दूसरा परमार्थ। जीवन ही दो तत्त्वों के मेल से बना हुआ है, एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। शरीर भौतिक तत्त्वों के योग से बना है। इसमें निवास करने वाला जो चेतन है वह आध्यात्मिक है। वह भौतिक तत्त्वों से सर्वथा अलग है। जीव और जड़ इन दोनों का संगम काल ही जीवन कहलाता है, इसलिए दोनों दिशा में सोचना-विचारना चाहिए और ऐसे काम करना चाहिए जिससे व्यावहारिक पक्ष भी उज्ज्वल हो और आध्यात्मिक पक्ष भी उज्ज्वल हो, जिससे जिसके लिए यह जीवन मिला है वह काम कर सकें।

जब तक व्यावहारिक पक्ष उज्ज्वल नहीं होगा तब तक आध्यात्मिक दिशा में प्रगति नहीं हो सकती। व्यवहार को नजरअंदाज कर, व्यवहार को बिगाड़कर आध्यात्मिक साधना करने की बात सोचना अपने को धोखा देना है। पहले व्यवहार है और हर समय सामने ही रहता है। व्यवहार है प्राणी और पदार्थों का बर्ताव। पदार्थ निर्जीव होते हैं उनके लिए कोई बड़ी खटपट नहीं होती। वे स्वयं अपनी ओर से परेशान नहीं करते। हम जैसा चाहें वैसा उनका उपयोग करें। यदि पदार्थ का गलत उपयोग करते हैं तो जीवन बिगड़ता है, मन में अशांति आती है। सही उपयोग करते हैं तो जीवन सुधरता है, मन में शांति आती है, लेकिन पदार्थ अपनी ओर से कुछ कह नहीं सकते, प्रेरित कर नहीं सकते क्योंकि वे निर्जीव हैं। प्राणियों का जो क्षेत्र है उसे दो भागों में बांट सकते हैं। एक क्षेत्र मनुष्यों का है और दूसरा क्षेत्र मानवेतर प्राणियों का है।

मानवेतर प्राणियों के लिए बहुत कुछ सोचना नहीं है। आप हजार गायें, हजार घोड़े, बैल, भैंस एवं अन्य जानवर पाल रखे हैं उनको चारा-पानी दे दें बस बात खत्म। उधर से कोई मानसिक झंझट नहीं आने वाली है। लेकिन मनुष्यों के साथ व्यवहार में कितनी खटपटें, कितनी झंझटें आती हैं इससे सभी परिचित हैं।

आदमी का एक छोटा बच्चा पालना भी बहुत मुश्किल होता है। छोटा ही बच्चा है लेकिन रो-रोकर दिमाग खराब कर देता है जब तक उसके मन की मांग पूरी नहीं होती।

आदमी के एक छोटे-से बच्चे को समझाना भी बहुत मुश्किल काम है। और उसमें जो समझदार-बड़े हो गये हैं उनके मन की रक्षा करना, उनसे सुन्दर व्यवहार करना, सम्हालकर चलना ताकि खटपट न आने पाये इसके लिए बहुत कुछ सहन करना पड़ता है, मन मारना पड़ता है तब कहीं जाकर यह काम हो पाता है।

व्यावहारिक क्षेत्र में कुछ बातों पर सावधानी रखकर व्यवहार को बहुत कुछ सुंदर बनाया जा सकता है। पहली बात—अपने कर्तव्य का पालन और दूसरों के अधिकार की रक्षा। दूसरी बात—अपनी इच्छाओं पर संयम और दूसरों की उचित इच्छाओं को पूरा करने का भरसक प्रयास। तीसरी बात—दूसरों की उचित बातों को स्वयं मान लेना लेकिन अपनी उचित बात भी दूसरों से मनवाने का हठ न करना। चौथी बात—स्वयं सहन कर लेना लेकिन दूसरों को सहाने की चेष्टा न करना। पांचवीं बात—हृदय को उदार बनाकर रखना और सब समय सबसे कोमल वाणी का प्रयोग करना। इतनी बातों पर थोड़ा ध्यान दें, इनका जीवन में आचरण करें तो व्यवहार की बहुत सारी कटुताएं समाप्त हो जाती हैं। बातें बहुत छोटी हैं लेकिन छोटी बातों का आचरण नहीं कर पाते तो बड़ी-बड़ी बातों का आचरण कैसे कर पायेंगे।

पहली बात है—अपने कर्तव्य का पालन और दूसरों के अधिकार की रक्षा। आज सर्वत्र अधिकार की बात कही जा रही है। हमारा यह अधिकार है। कर्मचारी हो, मजदूर हो, अफसर हो, कारखाने के मालिक हों, पति हो, पत्नी हो, पिता हो, पुत्र हो सबको अपना अधिकार चाहिए। जगह-जगह नारा लगाया जाता है कि हमारा यह अधिकार है, हम अपने अधिकार को लेकर

रहेंगे। शायद ही यह नारा कभी लगता हो कि यह हमारा कर्तव्य है इसको हम पूरा करके ही रहेंगे।

पिता अपने अधिकार को देखता है, सोचता है कि मैंने पुत्र को पैदा किया, पाला-पोषा, लिखाया-पढ़ाया, योग्य बनाया, मेरा अधिकार है पुत्र से सेवा पाना। पुत्र सोचता है कि मेरा अधिकार है पिता से सारी सुविधाएं पाना, पिता के सारे धन पर अधिकार पाना, अपने हाथ में रखना। दोनों अपने अधिकार को सोचते हैं अपने कर्तव्य पर ध्यान नहीं है। पिता सोच ले कि मेरा कर्तव्य है बेटा को पाल-पोष देना, लिखा-पढ़ा कर योग्य बना देना। अब इसके आगे बेटा जाने। पुत्र सोच ले कि पिता ने मुझे पैदा किया, लिखाया-पढ़ाया, योग्य बनाया, तो मेरा स्वाभाविक कर्तव्य होता है पिता की सेवा करना, पिता का अधिकार है मेरे द्वारा सेवा पाना। देखें फिर झगड़ा खत्म हो जायेगा।

आजकल हर परिवार में टूटन है। नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी दोनों की सोच अलग-अलग है। जो सत्तर-पचहत्तर के हो चुके हैं उनका पालन-पोषण भिन्न परिवेश में, भिन्न वातावरण में हुआ है और आज जो बीस-पचीस साल के हैं उनका पालन-पोषण भिन्न परिवेश में, भिन्न वातावरण में हुआ है।

पहले चीजें इतनी नहीं थीं। विज्ञान का विकास इतना नहीं था। लोग संयुक्त परिवार में रहते थे। परिवार का एक मुखिया होता था। मुखिया के आज्ञानुसार सारे काम होते थे। लोग उनके आज्ञानुसार ही आते-जाते थे और जो कुछ मिलता था सब मिल-बांटकर खा-पी लेते थे। आज चीजें बढ़ गयी हैं। विज्ञान ने भोग की बहुत सारी सामग्रियां इकट्ठी कर दी है। अब हर आदमी के मन में भोग एवं अधिकार की लालसा बढ़ती चली जा रही है। कोई किसी के अधीन रहना नहीं चाहता। सब स्वतंत्र होना चाहते हैं। इसलिए कोई किसी की बात मानना भी नहीं चाहता।

विज्ञान का जमाना है। विज्ञान ने ऐसे-ऐसे आविष्कार किये हैं कि देश और काल की दूरी सिमिटकर रह गयी है। पहले कहीं दस-बीस मील की ही यात्रा करनी होती थी तो कितना समय लगता था। लोग पैदल यात्रा करते थे और आज घंटों में कहां से कहां पहुंचा जा सकता है। सेकण्डों में कहां से कहां बात की जा सकती है। विज्ञान ने ऐसा कमाल किया कि पूरी दुनिया मुट्ठी में सिमट गयी है। देश-काल की दूरी समाप्त हो गयी है लेकिन देश-काल की दूरी समाप्त होती गयी और दिल की दूरियां बढ़ती चली गयीं।

आज किसी का किसी से दिल नहीं मिलता है। सबके मन में संशय है, कुढ़न है, असंतोष है। किसी के लिए समर्पण भावना नहीं है, प्रेम नहीं है, इसलिए सम्पत्ति और सुविधा बढ़ जाने के बाद भी सबका मन अशांत-असंतुष्ट है। सब कुढ़ रहे हैं। बाहर की वस्तुएं केवल जीवन निर्वाह एवं सुविधा के लिए हैं। इनको जब लक्ष्य और जीवन का उद्देश्य मान लेंगे तब नीति एवं संयम से रहना और बड़े-बुजुर्गों को आदर दे पाना बड़ा मुश्किल होगा।

आज सर्वत्र नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में संस्कारों को एवं मान्यताओं को लेकर टूटन है, लेकिन खास टूटन अपने मन की इच्छाओं को लेकर है।

सब सबसे पहले अपनी इच्छाओं को पूरा करना चाहते हैं। सबके मन में यही होता है कि दूसरों को मिले या न मिले, मुझे मिलना चाहिए। इस प्रकार सबकी भोग-लालसा बढ़ती चली जा रही है। इस भोग-लालसा पर संयम करना होगा। अतः दूसरों की उचित इच्छाओं को पूरी होने में सहयोग करें और अपनी इच्छाओं पर संयम रखें। जो अपनी इच्छाओं पर संयम करेगा, अपने मन को मार लेगा और दूसरों की उचित इच्छाओं को पूरा होने देगा वही दूसरों को उचित प्रेम दे सकेगा और दूसरों के अधिकार की रक्षा कर सकेगा। जहां अपने अधिकार को देखने की बात आयेगी वहां विवाद होगा, कलह होगा, अशांति होगी।

इसलिए अपने कर्तव्य का पालन करें। जो जिस श्रेणी में जहां पर हैं पिता, पुत्र, पति, पत्नी, सास, बहू सब अपने कर्तव्य को देखें। अपने अधिकार को न देखें। अधिकार को देखना है तो दूसरे के अधिकार को

देखें। अपने कर्तव्य का पालन करते चलें अधिकार पीछे-पीछे आता जायेगा। उसके लिए अलग से सोचना नहीं पड़ेगा। अधिकार की लालसा जितनी बढ़ेगी कर्तव्य उतना भूलता चला जायेगा, फिर जो नहीं करना चाहिए वह काम भी आदमी करना शुरू कर देगा।

दूसरी बात है दूसरों की उचित बातें स्वयं मान लेना लेकिन अपनी उचित बातें भी दूसरों से मनवाने का हठ न करना। सोचें आप क्या चाहते हैं? यही न कि मेरी बात उचित है इसलिए मेरी बात लोग मानें। तो यदि दूसरे लोग उचित बात कह रहे हैं तो उन बातों को आप क्यों न मान लें। यह अहंकार नहीं करना चाहिए कि मैं घर का मालिक हूं, समाज का प्रबंधक हूं, मठ का व्यवस्थापक हूं या गुरु हूं, आफिस का प्रबन्धक हूं, इसलिए केवल मैं ही अच्छी बातें कह सकता हूं, मेरी बात ही सही होगी। लेकिन ऐसा है नहीं। आप भी गलत हो सकते हैं और दूसरे भी अच्छे हो सकते हैं। पहले सबकी राय को सुनें फिर उस पर विचार करें। सद्गुरु कबीर साहेब ने कितना बढ़िया कहा है—'सुनिये सबकी निबेरिये अपनी' सबकी बातों को सुनें और सुनकर निबेरा-निर्णय करें कि क्या उचित है और क्या अनुचित है। जो अनुचित है उसका त्याग करें और जो उचित है उसको ग्रहण करें।

अतः दूसरों की उचित बातों को स्वयं मान लें लेकिन अपनी उचित बात भी मनवाने का हठ न करें। कई बार ऐसा होता है कि माता-पिता चाहते हैं कि यह काम ऐसा हो, लड़का चाहता है कि यह काम ऐसा न हो। माता-पिता समझाते हैं लेकिन लड़का बात नहीं मानता तो माता-पिता यहां तक कहने लग जाते हैं कि यदि तुम हमारी बात नहीं मानोगे तो हम सप्ताह भर भोजन नहीं करेंगे या कुआं में कूदकर मर जायेंगे। अब लड़का के सामने धर्मसंकट आ जाता है। उस समय तो लड़का बाहर से झुक जायेगा, लेकिन भीतर दरार पड़ जायेगी। आपके प्रति श्रद्धा कम हो जायेगी।

आपकी बात उचित है तो इतना ही कहें बेटा! इस चीज को मैं ऐसा समझता हूं। मुझे समझ में आता है कि यह बात ऐसी है और ऐसा करने पर ही काम उचित होगा। लड़का आपकी बातों को नहीं माना और काम बिगड़ गया तो लड़का स्वयं पश्चाताप करेगा और सोचेगा कि पिता जी सही कह रहे थे। मैं उनकी बात को मान जाता तो यह काम नहीं बिगड़ता और उसके मन में आपके प्रति श्रद्धा बढ़ेगी।

एक बार स्वयं झुककर तो देखें। दूसरों को झुकाने के लिए स्वयं झुकना होगा। स्वयं अकड़ा रहे और दूसरों को केवल झुकाना चाहे यह कभी संभव नहीं है। जहां अहंकार आया कि मैं बड़ा, वहां झुकना असंभव हो जाता है। अपने को दूसरों से बड़ा मानना और जो कुछ शक्ति प्राप्त है धन, पद, विद्या, प्रभुता आदि इनका अहंकार करना महा मूर्खता है। अहंकार मूर्खता के अलावा और कुछ भी नहीं है। किन्तु सब इस मूर्खता को बड़े प्यार से पालते हैं अपने-अपने दिल-दिमाग में।

अतः अपने को बड़ा न मानें। यदि बड़े हैं तो किस बात में बड़े हैं। बड़े हैं तो कुछ बड़ाई दिखनी तो चाहिए। हर आदमी अपने को बड़ा मनवाना चाहता है लेकिन बड़ाई बाहर से नहीं होती है, बड़ाई भीतर से आती है। धन के नाते कोई बड़ा हो गया, पद के नाते बड़ा हो गया, विद्या के नाते या ज्ञान के नाते बड़ा हो गया तो कुछ अंश में बड़ा है। सही अर्थ में बड़ा बनना चाहते हैं तो उसके लिए कुछ करना होगा। कबीर साहेब कहते हैं कि तुम बड़ा बनना चाहते हो तो उसका रास्ता मैं बताता हूं सचमुच में बड़े बन जाओगे और तुम्हें लोग अपने आप बड़ा मानेंगे। साहेब कहते हैं—

दया गरीबी बंदगी, समता शील सुभाव।
कहैं कबीर सोई बड़ा, जामें बड़ा स्वभाव॥

साहेब कहते हैं कि बड़ा वह है जिसका स्वभाव बड़ा है। बड़े स्वभाव की पहली पहचान है दया। दीन-दुखियों पर दया। भले किसी की सेवा न कर सकें लेकिन हृदय पसीझना तो चाहिए कि बेचारा बड़ा दुखी है, ऐसा संकट इस पर न आया होता, ऐसा दुख न आया होता तो अच्छा होता। कम से कम हृदय में करुणा तो उपजनी चाहिए। लेकिन हृदय में करुणा ही नहीं उपजती

है तो यह क्रूरता की पहचान है। यह क्रूरता बनाये रखकर कोई बड़ा नहीं हो सकता। जिसके मन में दया की भावना होगी वह किसी के साथ दुर्व्यवहार नहीं कर सकता, किसी को तकलीफ नहीं दे सकता, किसी के रास्ते में रोड़ा नहीं अटका सकता। इसलिए दया करना सीखें।

गरीबी का अर्थ है थोड़ी वस्तुओं में गुजर करना, कम से कम वस्तुओं में जीवन व्यवहार चलाना। आज आदमी शरीर निर्वाह के लिए कपड़े नहीं पहनता है, फैशन के लिए कपड़े पहनता है। और फैशन का कोई ठिकाना नहीं है। रोज-रोज तो फैशन बदल रहा है। कपड़ा तो शरीर की मर्यादा को ढकने के लिए, मक्खी-मच्छर, कीड़े-मकोड़े से बचाने के लिए, ठण्डी-गर्मी निवारण के लिए है बस। फैशन देख-देखकर आदमी कपड़ों का अंबार लगाता जा रहा है।

एक सज्जन मिले। उन्होंने कहा—साहेब! हमारी बहू जब भी बाजार जाती है तो दो-तीन साड़ी जरूर खरीदकर ले आती है और किसी साड़ी को ज्यादा दिनों तक पहनती नहीं है। साड़ी लाती भी है तो मंहगी-मंहगी साड़ियां लाती है। पूरा बक्सा भरा हुआ है साड़ियों से और साड़ियां बक्से में पड़ी-पड़ी सड़ रही हैं। लेकिन वह जब बाजार जाती है तो दो-तीन साड़ियां खरीदकर ले आती है।

मैंने कहा—अपनी बहू से कह दीजिए जो साड़ियां बक्से में पड़ी सड़ रही हैं उन साड़ियों को गरीब स्त्रियों को बांट दे। उसने कहा—वाह साहेब! बांट कैसे दें। एक-एक साड़ी डेढ़-दो हजार की है। मैंने कहा—बक्से में सड़ रही हैं उससे तो अच्छा बांट देना है, किसी के तो काम आयेगी।

एक सज्जन कह रहे थे कि साहेब, मेरे पास इतने कपड़े हैं कि आज के बाद यदि पच्चीस साल तक और जीऊं तो मुझे एक भी कपड़े बनवाने की आवश्यकता नहीं होगी। यह सब केवल दिमाग खराब करने वाली बात है। पास में कपड़े ज्यादा हैं तो सड़ने से पहले गरीबों को बांट दें किसी के तो काम में आयेगा। ऐसे भी लोग हैं जिन्हें बड़ी मुश्किल से कपड़े मिल रहे हैं। आप नये फैशन के आदमी हैं, और आपके पास पैसे हैं तो आप नये-नये फैशन के कपड़े खरीदिये, कौन मना करता है?

आदमी के मन में बटोरने की भावना है, चाहे दूसरों को लूटकर क्यों न बटोरना पड़े, दूसरों के पेट पर लात मारकर क्यों न बटोरना पड़े, बटोरेंगे, क्योंकि दया नहीं है, मन में भोग की भावना है तो दुख तो आयेगा ही। इसलिए साहेब कहते हैं गरीबी अर्थात थोड़े में गुजर करो।

गरीबी है थोड़ी वस्तुओं में गुजर करने की भावना और बंदगी है विनम्रता, सेवा। अपने को विनम्र बनायें, छोटा बनायें, झुकना सीखें किन्तु अहंकार झुकने नहीं देता है। सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं—

सब ते लघुता भली, लघुता से सब होय।
जस दुतिया को चंद्रमा, सीस नावै सब कोय॥

(बीजक, साखी 323)

लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर।
चींटी शक्कर ले चली, हाथी के सिर धूर॥

(कबीर साखी)

साहेब कहते हैं—विनम्रता सबसे अच्छी चीज होती है। देखें, दुतिया का चंद्रमा कितना झुका हुआ होता है लेकिन दुतिया के चंद्रमा को सब नमस्कार करते हैं। पूर्णिमा के चन्द्रमा को लोग नमस्कार नहीं करते।

दुतिया का चांद रोज-रोज बढ़ता चला जाता है और तब कहीं पूर्ण होता है। पूर्णिमा के बाद तो घटना शुरू हो जाता है। विनम्र बने रहोगे तो उन्नति होती जायेगी और मान लोगे कि मैं पूरा हो गया बस उसी दिन से पतन शुरू हो जायेगा। इसलिए साहेब कहते हैं बंदगी, नम्रता। झुकना सीखें। जो झुकता है वही दूसरों से सीखता और कुछ पाता है।

प्यास लगी हो तो टोंटी के ऊपर हाथ रखकर पानी पीना चाहोगे तो प्यास नहीं बुझेगी। टोंटी से और पानी पिलाने वाले से हाथ नीचे ही रखना पड़ेगा तब प्यास

बुझेगी। जिसमें ग्रहण बुद्धि होती है, ग्रहण क्षमता होती है वही झुकता है—

जहाँ गाहक तहाँ हौं नहीं, हौं तहाँ गाहक नाहिं।
बिना विवेक भटकत फिरे, पकरि शब्द की छाहिं॥

(बीजक, साखी 289)

साहेब कहते हैं—जहां ग्राहक बुद्धि है, सीखने की, पाने की बुद्धि है वहां पर अहंकार नहीं होगा, और जहां अहंकार होगा वहां ग्रहण-बुद्धि नहीं होगी क्योंकि वहां हृदय कठोर हो जाता है फिर आदमी सीख नहीं पाता। मुलायम मिट्टी में ही छाप उभरती है। कठोर मिट्टी में, कठोर पत्थर में छाप नहीं उभरती। इसलिए किसी कवि ने कहा है—

झुकता वही है जिसमें जान होती है।
अकड़ना तो मुर्दे की पहचान होती है॥

बड़ी सरल बात है। शरीर में जब तक जान है तब तक शरीर के अंगों को आप मोड़ सकते हैं और जैसे ही जान निकल जाती है मुर्दा शरीर अकड़ जाता है। इसलिए अकड़बाज न बनें। किसी चीज को लेकर अपने को बड़ा न मानें, विनम्र बनें।

अतः दूसरों की उचित बातों को स्वयं मान लें, लेकिन अपनी उचित बात भी दूसरों से मनवाने का हठ न करें। लोगों को केवल बता दें। वे सुनना चाहते हैं तो राय दे दें। राय दे सकते हैं किन्तु उन्हें मानना ही पड़ेगा ऐसा जहां आयेगा फिर धोखा खाना होगा।

तीसरी बात है स्वयं सहनशील बनें, स्वयं सह लें, लेकिन दूसरों को सहाने की चेष्टा न करें। गलती किससे नहीं होती है? क्या कोई कह सकता है कि मुझसे कभी गलती न हुई है न होगी। हर किसी से गलती होती है। सोचें, जब स्वयं से गलती होती है तो आप क्या चाहते हैं? आपका दिल क्या चाहता है? यही तो चाहते हैं कि मुझसे जो गलती हुई दूसरे लोग इसे क्षमा कर दें, मेरी गलती को सहन कर लें। यही बात हर आदमी चाहता है। आप बड़े हैं तो आपका बड़प्पन इसमें है कि आप दूसरों की गलती को सहन कर लें, क्षमा कर दें। लेकिन जब अपने से बड़ी-सी-बड़ी गलती हो जाती है तब कहते हैं कि मैंने जानबूझकर थोड़े किया है। और दूसरों से छोटी गलती हो जाती है तब उसमें कितना भला-बुरा कहते हैं। कहते हैं तुमने जानबूझकर बिगाड़ा है। दूसरे की गलती जैसे होती है बड़बड़ाना शुरू कर देते हैं।

पिता और पुत्र दोनों ड्राइंग रूम में बैठे हुए बात कर रहे थे। किचन रूम से कुछ गिरने की आवाज आयी। आवाज सुनकर पिता ने कहा—बेटा! जाओ, देखो तो क्या चीज गिरी है और किसके हाथ से गिरी है, देखकर बताओ। लड़के ने कहा—पिता जी, क्या चीज गिरी है यह तो मैं देखकर ही बता सकता हूं लेकिन किसके हाथ से गिरी है मैं यहीं से बता सकता हूं। पिता ने कहा—क्या तुम्हें संजय की भांति दिव्य दृष्टि मिल गयी है? लड़के ने कहा—पिता जी! दिव्य दृष्टि की बात नहीं है, यह तो बड़ी सरल बात है। पिता ने कहा—अच्छा बताओ, किसके हाथ से गिरी है? उसे कहा—पिता जी! जो भी चीज गिरी है मां के हाथ से गिरी है। पिता ने कहा—इतनी निश्चयता से कैसे कह सकते हो। तुम्हारी पत्नी के हाथ से भी तो गिर सकती है। उसने कहा—हां, गिर सकती है और गिरती भी है, लेकिन आज जो चीज गिरी है वह मां के हाथ से ही गिरी है। जब कोई चीज गिरती है तो आवाज होती ही है। जब कोई चीज मेरी पत्नी के हाथ से गिरती है तो जो चीज गिरती है उसकी आवाज तो आती है लेकिन जैसे ही वह आवाज बंद होती है मां की आवाज शुरू हो जाती है किन्तु आज केवल चीज गिरने की आवाज आयी है, मां की आवाज नहीं आ रही है तो समझ लिया मां के हाथ से गिरी है।

माताओं को चाहिए कि अपनी बहू के साथ पुत्रीवत व्यवहार करें। बहू को बहू न मानें, बहू को पुत्री मानें। बहू को बेटी मानोगी तब उसके साथ सही व्यवहार कर पाओगी। हर मां चाहती है कि मेरी बेटी विवाह करके जिस घर में जाये वहां उसकी सास उसको पुत्री मानकर उससे प्रेम का व्यवहार करे तो आपके घर में भी किसी की बेटी आयी हुई है, आप उसको बेटी क्यों नहीं मानती। जब आप किसी की बेटी को बेटी नहीं मानती

तो आपकी बेटी दूसरे के घर में बेटी कैसे मानी जायेगी।

प्राय: हर मां सोचती है कि कब मैं बेटे की शादी करूं और कब घर में बहू आये, बहू का मुख देखने को मिले और बहू के हाथ से भोजन खाने को मिले। पिता भले ही थोड़ा रुक जाये लेकिन बहू लाने के लिए हर मां को जल्दीबाजी होती है और जैसे ही बहू आती है, बहू की शिकायत सास ही करती है। शिकायत न करें। गलतियां होती हैं। आप अनुभवी हैं, बहुत दिनों से दुनिया को देख रही हैं किन्तु बहू नयी है। जिस घर में पली-बढ़ी है वहां के संस्कार अलग हैं, आपके घर के संस्कार अलग हैं। वह अंदर से भयभीत है कि मुझसे कोई गलती न होने पाये, किन्तु भय के कारण गलती हो जाती है। गलती हो जाये तो उसे प्यार दें, साहस दें कि कोई बात नहीं बेटी, गलती हो गयी तो हो गयी फिर नये सिरे से काम करो, चिंता मत करो। चीज बिगड़ गयी तो बिगड़ गयी, चीज की कीमत नहीं है, तुम्हारी कीमत है। जब ऐसा साहस दोगी, प्यार दोगी, तो उसका दिल आपके लिए समर्पित हो जायेगा और फिर उससे आपको जो श्रद्धा मिलेगी, सेवा मिलेगी उसकी आप कल्पना नहीं कर सकतीं।

इसलिए यदि चाहते हैं कि बुढ़ापा सुख से कटे तो बहुओं को प्यार देना, प्रेम देना शुरू करें। खास बात है स्वयं सहनशील बनें दूसरों को सहाने की चेष्टा न करें। जानबूझकर गलती न करें, लेकिन किसी से गलती हो गयी तो क्षमा कर दें, प्रेम से समझा दें। आप जितना प्रेम से समझायेंगे उतना आप अपने लिए उसके दिल में जगह बनाते जायेंगे और वह आपके प्रति समर्पित होता जायेगा और आपकी बात को मानता जायेगा।

हृदय को उदार बनाकर रखें, संकुचित न बनायें। हृदय को ऐसा उदार बनायें कि सबकुछ को आत्मसात कर लें। भारतीय परंपरा में विराट पुरुष की कल्पना की गयी है। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को विश्वरूप दिखाया है ऐसा कहा जाता है।

आपने देखा होगा उस विश्वरूप दर्शन में सिर अनेक हैं, हाथ अनेक हैं और कई चीजें अनेक हैं लेकिन हृदय एक है। हम अनेक भले हों लेकिन हम लोगों का हृदय एक हो। और यह तब होगा जब हृदय उदार होगा। इसलिए अपने हृदय को ऐसा उदार बनायें कि सबको आत्मसात कर सकें। कभी हमारे पूर्वजों ने कहा था कि 'कृणवन्तो विश्वमार्यम्' पूरे विश्व को आर्य बनाओ और आज अपने भाई को आर्य कहने का साहस नहीं करते। कहते हैं तुम निम्न जाति में पैदा हुए हो इसलिए तुम नीच हो, अछूत हो। भाई को भाई बनाने की क्षमता खत्म है तो विश्व को आर्य क्या बनायेंगे।

हमारे महापुरुषों की पाचन शक्ति अत्यंत मजबूत थी। कितने-कितने आततायी हमलावर आये और सबके सब को भारतीय संस्कृति में समाहित कर लिया गया क्योंकि उनका हृदय उदार था, उनकी पाचन शक्ति उदार थी। सबको उन्होंने अपने में समेट लिया और आज उन्हीं के वंशजों में अपने भाई को पचाने की क्षमता नहीं है। लोग अत्यन्त संकुचित हो गये हैं। और यदि संकुचित हो जायेंगे तो राष्ट्रीय एकता की बात कहां आ सकती है? राष्ट्रीय एकता की बात बहुत कही जाती है कि राष्ट्रीय एकता होनी चाहिए। लेकिन राष्ट्रीय एकता कैसे होगी?

पहले यह समझना होगा कि राष्ट्र किसे कहते हैं? यह धरती, नदी, नाले, पेड़, पहाड़, पौधे, तालाब इनको राष्ट्र नहीं कहा जा सकता। यदि ये सब राष्ट्र हैं तो चंद्रमा भी राष्ट्र है लेकिन क्या चंद्रमा को राष्ट्र कहेंगे? चंद्रमा निर्जीव है, इंसानों से रहित है इसलिए चंद्रमा राष्ट्र नहीं है। इंसान जहां होता है वहीं राष्ट्र होता है। राष्ट्रीय एकता का मतलब है देश में बसने वाले जितने भी लोग हैं चाहे वे किसी भी परंपरा के मानने वाले हों, किसी मत-मजहब, संस्कृति के मानने वाले हों, किसी जाति के मानने वाले हों समझना चाहिए हम सब भारत मां के बेटे हैं और हमें सबके साथ भाईचारे का व्यवहार करना होगा। भाईचारे का व्यवहार जब सुदृढ़ होगा, आपस में एकता होगी, समता होगी तब राष्ट्र सुदृढ़ होगा, राष्ट्र में एकता होगी किन्तु यदि आपस में संदेह है, अविश्वास है, वैर-विरोध है, कलह है तो राष्ट्रीय एकता का राग

अलापते रहेंगे, और देश खण्ड-खण्ड होता चला जायेगा।

दूसरों को आप विश्वास दें। दूसरों को आप जितना विश्वास देंगे उतना ही आप उनसे विश्वास प्राप्त करेंगे। दुनिया में आप जैसा देंगे वैसा मिलेगा। पहले विश्वास देना तो शुरू करें, प्रेम देना शुरू करें लेकिन जिन्हें अपने लोग कहते हैं उन्हें ही प्रेम दे नहीं पाते हैं, जिन्हें अपना कहते हैं उनका ही दिल जीत नहीं पाते हैं तो दूसरों का दिल कैसे जीत पायेंगे।

राष्ट्रीय एकता हवाई बात करने से नहीं आयेगी। तथ्य में उतरना होगा और चाहे कोई भारत के किसी भी कोने का नागरिक हो वह हमारा भाई है ऐसा समझकर सबसे भाईचारे का व्यवहार करना होगा और इस देश में जो भी जन्में हैं, जो भी पल-बढ़ रहे हैं या निवास कर रहे हैं चाहे वे किसी परम्परा, किसी संप्रदाय, मत-मजहब के मानने वाले हों उन्हें भी यह समझना होगा कि हम भारत की धरती पर जन्में हैं, इसी की मिट्टी में हमारा शरीर जायेगा, भारत हमारी मातृभूमि है और इसके लिए हमें समर्पित होकर जी-जान से इसकी रक्षा करनी होगी तब राष्ट्रीय भावना आयेगी और इसके लिए स्वयं को तैयार करें।

आज राजनीति में तो जहर अंदर तक घुस गया है। वह जहर है जांति-पांति और राम-रहीम को लेकर राजनीति करना। राजनेता लोग अपनी कुर्सी के मोह में पड़कर क्या-क्या अनर्थ नहीं कर रहे हैं? जो राजनेता आपके पास जात-पांत और राम-रहीम का नाम लेकर वोट मांगने के लिए आयें उन्हें आप कह दीजिए हमें आपकी जरूरत नहीं है। हमें आवश्यकता है उस राजनेता की जो पूरी भारतीय समग्रता को लेकर चलने वाला हो। पूरे समाज को लेकर चलने वाला हो। आप खण्ड-खण्ड करके राष्ट्रीय एकता कैसे करेंगे? आधी मुर्गी काटकर खा जाना चाहेंगे और सोचेंगे कि आधी मुर्गी अण्डा देगी तो यह नहीं होने वाला है।

किसी एक जाति को लेकर, किसी एक संप्रदाय को लेकर, बैकवर्ड-फारवर्ड को लेकर राजनीति करना गंदी राजनीति है और यह राजनीति देश को तोड़ देगी, और उससे पहले आप लोगों को सावधान हो जाना चाहिए। ऐसे राजनेताओं को जरा भी श्रेय न दें तब तो देश अखण्डित रहेगा। नहीं तो ये राजनेता कुर्सी के लिए क्या-क्या अनर्थ नहीं कर देंगे कुछ नहीं कहा जा सकता।

राष्ट्रीय एकता का अर्थ है देश में निवास करने वाले जितने भी लोग हैं सबके साथ भाईचारे का, प्रेम का व्यवहार, परस्पर एक दूसरे के साथ विश्वास तब राष्ट्रीय एकता आयेगी।

अतः हृदय उदार होना चाहिए। उदार हृदय जिसका होता है वह सबको साथ लेकर चलता है। संकुचित न बनें। यह समझें कि सभी हमारे हैं।

अंत में है कोमल वाणी। कोमल वाणी कौन नहीं चाहता। कटुवाणी जैसे हमें प्रिय नहीं है ऐसे दूसरों को भी प्रिय नहीं है। छोटे से छोटे बच्चे को भी कटु वाणी प्रिय नहीं है। महाभारत के शांति पर्व में कथा आती है। महाभारत युद्ध के छत्तीस वर्ष बाद की घटना है। महाराज श्री कृष्ण अपने गृह कलह से ऊबकर देवर्षि नारद के पास जाते हैं और कहते हैं—देवर्षि नारद! अपने गृह कलह से मैं ऊब गया हूं। अक्रूर और आहूक ये दोनों बड़े योग्य हैं लेकिन दोनों आपस में इतना झगड़ते हैं कि मैं क्या कहूं। किसी एक को समझाता हूं तो समझते हैं यह उस व्यक्ति का पक्ष लेने वाला है तभी मुझे कह रहा है। मेरी स्थिति तो ऐसी हो गयी है जैसे एक मां के दो बेटे हों और दोनों भाई आपस में जुआ खेल रहे हों और माता चाहती है कि एक भाई की जीत हो जाये लेकिन दूसरे की हार न हो। क्या यह संभव है? मेरी स्थिति भी वैसी है। लोग समझते हैं कि कृष्ण ऐश्वर्य का भोक्ता है लेकिन मैं ही जानता हूं कि मैं क्या हूं? मुझे जो कुछ मिलता है उसका आधा समाज के लिए दे देता हूं और आधे से अपना गुजर करता हूं, फिर भी लोग मेरी बातों को सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। आप कुछ रास्ता बतायें ताकि मैं अपने परिवार को सम्हाल सकूं।

महाराज श्री कृष्ण जैसे शूरवीर, नीतिनिपुण, राजनीतिकुशल पुरुष के सामने भी यादव वंश का कलह सामने आया और उन्हें सम्हालना मुश्किल हो गया। आज जो माता-पिता शिकायत करते हैं कि लड़का कहा नहीं मानते वे याद कर लिया करें महाराज श्रीकृष्ण के जीवन को तो उन्हें काफी संतोष मिलेगा।

महाराज श्री कृष्ण की बातें सुनने के बाद देवर्षि नारद कहते हैं—श्री कृष्ण! आदमी का दुख दो प्रकार का होता है। एक बाहर का, एक भीतर का। बाहर का दुख, जैसे हम यहां बैठे हैं अचानक यह खम्भा गिर जाये, हमने अभी कोई गलती नहीं की और खम्भा गिर गया, सिर में चोट आ गयी। पंखा चलते-चलते ऊपर से गिर गया और चोट लग गयी। इस प्रकार ऐसे जितने भी दुख हैं सब बाहर के हैं। लेकिन मैंने किसी को गाली दी और उसने मुझे थप्पड़ मार दी यह भीतर का दुख है। नारद ने कहा—आपका दुख बाहर का नहीं है, भीतर का है।

आपके सामने ऐसी कुछ मजबूरियां आयीं कि आपको जीवनपर्यंत लड़ाइयां लड़नी पड़ी। अनेक दुष्ट रजवाड़े थे उन सबका दमन आपको करना पड़ा। आपके साथ-साथ आपके परिवार के लोग भी आपकी लड़ाई में सहायक रहे। वे भी लड़ते रहे, इससे उनकी लड़ने की आदत हो गयी। अब बाहर की लड़ाई खत्म हो गयी है। लड़ने की आदत है तो कहां लड़ें? आपस में लड़ाई करेंगे।

कितने माता-पिता बच्चे को गाली देना सिखाते हैं, मारना सिखाते हैं, झूठ बोलना सिखाते हैं बाद में वही बच्चा माता-पिता के साथ उनके बुढ़ापा में वही व्यवहार करने लगता है। अतः सावधान। किसी को गाली नहीं देना चाहिए और बच्चों को गाली सिखानी ही नहीं चाहिए। गाली का अर्थ है असभ्यता। गाली चाहे अनपढ़ के मुख से निकले चाहे विद्वान कहलाने वाले के मुख से निकले। जिसके मुख से गाली निकल रही है वह असभ्य आदमी है। मात्र पढ़ाई-लिखाई से सभ्यता नहीं आती है। कितने पढ़े-लिखे लोग हैं जो बात-बात में गाली देते रहते हैं और कितने अनपढ़ देहाती हैं उनकी जबान से कभी गाली निकलती ही नहीं है।

नारद ने कहा—बाहर की लड़ाई समाप्त हो गयी है और लड़ने की आदत है तो कहां लड़ें? आपस में लड़ेंगे।

आप परिवार के मुखिया हैं, समर्थ हैं। समतल जमीन में कमजोर बैल भी भरी हुई गाड़ी को खींच सकते हैं लेकिन ऊंची-नीची जमीन में भरी गाड़ी को तो बलवान बैल ही खींच सकते हैं। आप समर्थ हैं, बलवान हैं, आप जाइये सम्हालिए।

भेदाद्विनाशः संघानां संघमुख्योऽसि केशव।
यथा त्वां प्राप्य नोत्सीदेत् अयं संघस्तथा कुरु॥

(शांतिपर्व 81/25)

देवर्षि नारद कहते हैं—हे कृष्ण! भेद-फूट पड़ने पर परिवार का, संघ का और राष्ट्र का विनाश होता है। फूट पड़ने पर परिवार, समाज और राष्ट्र को सुरक्षित रखना मुश्किल होता है। आप जैसे समर्थ को पाकर इस यादव वंश का विनाश हो यह ठीक नहीं है।

मैं आपको उपाय बताता हूं। इन उपायों को आप अमल में लाने की कोशिश करें। पहली बात, अनायस शस्त्र का प्रयोग, दूसरी बात मन देखकर काम लेना और तीसरी बात धन का उचित बंटवारा करते रहना।

अनायस शस्त्र वह शस्त्र है जो लोहे से न बना हो। उन्होंने कहा—अनायस शस्त्र का प्रयोग करके आप अपने परिवार वालों की जीभ को उखाड़ लें। अनायस शस्त्र का अर्थ है मीठी वाणी। मीठी वाणी का प्रयोग करके आप अपने परिवार वालों की बोलती बंद कर सकते हैं, उनके दिल को जीत सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण एक मंत्र है, तज दे वचन कठोर॥

मीठा वचन वशीकरण मंत्र है और कटु वचन जहर के तुल्य है। सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं—

मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
श्रवण द्वार ह्वै संचरै, साले सकल शरीर॥

कटुवचन तीर के तुल्य हृदय में प्रवेश करते हैं और पूरे शरीर में घाव बना देते हैं।

एक कोयल और एक कौआ दोनों साथ-साथ रहते थे। कोयल कहीं बाहर गयी थी, लौटी तो देखती है कि कौआ कहीं जाने की तैयारी कर रहा है। कोयल ने पूछा—भैया! क्या कहीं बाहर जा रहे हो? कौए ने कहा—हां बहन! मैं बाहर जा रहा हूं। जहां रहने से आदर न मिले वहां नहीं रहना चाहिए। यहां मैं जहां भी बैठता हूं और जैसे ही बोलना शुरू करता हूं लोग मुझे पत्थर मारकर भगा देते हैं। इसलिए मैं यहां नहीं रहूंगा, दूसरी जगह जाऊंगा, जहां आदर मिल सके।

कोयल ने कहा—भैया! स्थान बदलने से काम नहीं बनेगा, स्वभाव बदलने से काम बनेगा। जहां जाओगे वहीं कर्र-कर्र बोलोगे तो भगाये ही जाओगे और पत्थर ही मिलेगा।

इसलिए मीठी वाणी का प्रयोग करें। हमारा दिल मीठी वाणी चाहता है तो हम भी दूसरों को मीठी वाणी दें। हमारे पास धन नहीं है तो हम धन नहीं दे सकते, विद्या नहीं है तो विद्या नहीं दे सकते, जमीन नहीं है तो जमीन नहीं दे सकते। आदमी के पास कुछ हो या न हो यदि वह गूंगा नहीं है तो वाणी जरूर है और वह दूसरों को मीठी वाणी तो दे सकता है। जो आदमी दूसरों को मीठी वाणी भी नहीं दे सकता उससे बड़ा दरिद्र दुनिया में और कोई नहीं है। इसलिए मीठी वाणी का प्रयोग करें।

ऊपर व्यवहार के कुछ सूत्रों पर चर्चा की गयी। व्यवहार को जब उज्ज्वल बना लेंगे तब परमार्थ का क्षेत्र उज्ज्वल बनेगा और आध्यात्मिक दिशा में प्रगति कर सकेंगे। जो जहां हैं, जैसी जिसकी श्रद्धा है, जैसा जिसका विश्वास है उस ढंग से कुछ न कुछ करते रहें तो करते-करते आगे का रास्ता साफ होता जायेगा और आगे का रास्ता जब साफ होता जायेगा तो जो असली मंजिल है, असली काम है वह भी समझने में आ जायेगा, वह भी करने लगेंगे और जीवन सफल हो जायेगा।

—धर्मेन्द्र दास

किसने की दुर्गति हमारी

रचयिता—जितेन्द्र दास

हरेक पहर सुबह शाम,
निज नाम सुमर प्यारे॥टेक॥

यारों खुद को संवारें,
तजें मनोविकार सारे।
अबकी बार न चूकें,
लगा है दावं हमारे॥ 1 ॥

जिंदगी खुशियों की ओर,
लौट चलें अपनी ओर।
खुद में है खुद की सीरत,
आओ उसे हम संवारें॥ 2 ॥

जंगल बाग चौबारों में,
गाँव गली बाजारों में।
मायावी दुखद संसार,
करते हैं हमें इशारे॥ 3 ॥

रंग-बिरंगी दुनियादारी,
किसकी करें खातिरदारी।
सभी है माया के आधीन,
खुद को अब कौन निहारे॥ 4 ॥

किसने की दुर्गति हमारी,
बिगड़ी बानी सोच हमारी।
जितेन्द्र आत्मज्ञान खबर नहीं,
अब तो करो बोध विचारे॥ 5 ॥

न हो कुछ भी अमल और हों किताबों से लदा।
'जफर' उन आदमी को हम तसऊर बैल कहते हैं॥

बीजक चिंतन

तृतीय प्रकरण : ज्ञान चौंतीसा

गुरुवचनों के आचरण से ही शांति

ग

गगा गुरु के बचनहिं मान।
दूसर शब्द करो नहिं कान॥
तहाँ बिहंगम कबहुँ न जाई।
औगह गहि के गगन रहाई॥ 3॥

शब्दार्थ—बिहंगम=विहंगम, पक्षी, तात्पर्य में मन। गगन=आकाश, हृदय।

भावार्थ—ग अक्षर के माध्यम से सद्गुरु उपदेश करते हैं कि गुरु के वचनों को मानो और दूसरे शब्दों पर कान न दो। गुरु-उपदेश के आचरण करने का फल स्वरूपस्थिति है जिसमें मन-पक्षी का प्रवेश कभी नहीं होता, और साधक अपने निराधार एवं असंग स्वरूप का भाव ग्रहणकर हृदय में शांत हो जाता है॥ 3॥

व्याख्या—"गगा गुरु के बचनहिं मान। दूसर शब्द करो नहिं कान॥" इस वाक्य में गुरु के वचनों को मानने पर जोर दिया गया है और दूसरे वचनों पर ध्यान न देने का सुझाव दिया गया है। यहां कोई स्थूल अर्थ न मान ले कि किसी भी गुरु नामधारी के वचनों को मान लेने की बात यहां कही गयी है। यह सच है कि सच्चे गुरु भी होते हैं जिनके ज्ञान और आचरण दोनों पवित्र होते हैं और उनकी बातों को बेधड़क मान लेने में साधक का कल्याण ही है। परन्तु ऐसे भी गुरु होते हैं जो आंशिक या सर्वाधिक कमजोर होते हैं। अतएव सुरक्षित मार्ग यही है कि निर्णय वचनों को ही गुरुवचन माना जाये। परम पारखी श्री रामरहस साहेब ने कहा भी है "निर्णय बानी गुरुमुख होई" अर्थात निर्णय वचन ही गुरुमुख वचन है। दो-दो चार गुरुमुख वाणी एवं गुरुवचन है। अतएव सद्गुरु कहते हैं कि सदैव निर्णय वचनों पर ध्यान दो। रोचक, भयानक एवं महिमापरक वचनों पर ध्यान न दो। गुरुनिर्णय एवं गुरुवचन स्वरूपज्ञान का परिचय कराने वाले हैं। गुरुवचनों का पूर्ण पालन करने पर जीव अपने स्वरूपस्थितिधाम में विश्राम पा जाता है। अतएव गुरुवचनों का फल है स्वरूपस्थिति; और स्वरूपस्थिति में मन-पक्षी का कभी प्रवेश नहीं होता। इसका तात्पर्य है कि साधक जब तक स्मरणों का सर्वथा परित्याग कर स्वरूपस्थ रहता है, तब तक वहां मन की गति नहीं रहती; परन्तु जब वह समाधि से उठकर व्यवहार में लगता है, तब मन का व्यापार तो चलता है, किन्तु उस जीवन्मुक्त पुरुष के हृदय में मन की मलिनता न रहने से मानो मन का उपशमन ही रहता है। अर्थात उसके हृदय से अशुद्ध मन सर्वथा मिट जाता है। अभ्यासकाल में संकल्पहीनता तथा व्यवहारकाल में आसक्तिहीनता—यही स्वरूपस्थिति एवं जीवन्मुक्ति है। समाधिकाल में किसी प्रकार का मन नहीं रहता और व्यवहारकाल में अशुद्ध मन नहीं रहता। ऐसे स्वरूपस्थ पुरुष मानो मन से सदैव मुक्त ही हैं। अतएव "तहाँ बिहंगम कबहुँ न जाई" यह गुरुवचन प्रामाणिक और व्यावहारिक भी है।

"दूसर शब्द करो नहिं कान" यह वाक्यांश भी ध्यान देने योग्य है। यदि साधक रोचक, भयानक, महिमापरक, विषय-वासना-उत्तेजक, प्रपंचवर्द्धक साहित्य एवं वचनों को पढ़ता, सुनता एवं उनकी ज्यादा चर्चा करता है तो उसका हृदय सांसारिक वासनाओं से भर जायेगा और वह स्वरूपस्थिति का काम नहीं कर पायेगा। अतएव शांतिइच्छुक साधकों को प्रापंचिक वाणियों को छोड़कर गुरुवचनों एवं स्वरूपज्ञानपरक वाणियों का ही मनन-चिन्तन करना चाहिए।

"औगह गहि के गगन रहाई" इस वाक्यांश का स्पष्ट विवेचन 'क' अक्षर के प्रसंग के अन्त में हो चुका है। वही अभिप्राय यहां समझ लेना चाहिए।

शरीराध्यास का त्याग मोक्ष में हेतु

घ

घघा घट बिनसै घट होई।
घटही में घट राखु समोई॥
जो घट घटै घटहि फिरि आवै।
घट ही में फिर घटहि समावै॥ 4॥

शब्दार्थ—घट=शरीर। समोई=शमन। घटै=आसक्त होय, देहासक्ति रचे। समावै=प्रविष्ट होना।

भावार्थ—घ अक्षर के माध्यम से सद्गुरु उपदेश करते हैं कि एक शरीर के नष्ट होने पर पुनः दूसरा शरीर बनता है। अतः इस शरीर का अध्यास इसी शरीर में रहते-रहते नष्ट कर दो। परन्तु यदि विषयों की आसक्ति में पड़कर मन में शरीरासक्ति की रचना करोगे, तो शरीर में पुनः आना पड़ेगा, और सूक्ष्म शरीर सहित माता के गर्भाशय रूपी घट में प्रविष्ट होकर पुनः शरीर बनेगा॥ 4॥

व्याख्या—एक शरीर जब छूट जाता है, तब कर्मों के जोर से पुनः दूसरा शरीर बनता है। इस प्रकार कर्माध्यासवश यह जीव एक के बाद दूसरा शरीर धारण करता चला जाता है, और इस भवसागर में भटकता रहता है। इसलिए मोक्ष की प्राप्ति के लिए केवल शरीर का नष्ट होना जरूरी नहीं है, किन्तु वासना का नाश जरूरी है। अतः सद्गुरु कहते हैं—"घटही में घट राखु समोई" अर्थात इस शरीर में रहते हुए शरीर की आसक्ति का ध्वंस कर दो।

यदि जीव घट में रहकर घटेगा, अर्थात शरीर में रहते हुए शरीराध्यास एवं विषयवासनाओं में क्षीण होगा, और विषयासक्ति की ही रचना करेगा, तो उसे पुनः घट में आना पड़ेगा। उसे पुनः शरीर धारण करना पड़ेगा।

उक्त पद में मुख्य तीन बातें बतायी गयी हैं। पहली बात है कि एक शरीर का नाश जीवनक्रम का अन्त नहीं है, अपितु जीव एक के बाद दूसरा शरीर धारण करता है। दूसरी बात है कि कहीं भी लौटने का कारण अवशेष वासना ही है। अंतिम तीसरी बात सद्गुरु की आज्ञा है कि शरीर में रहते-रहते शरीर की वासना का त्याग कर दो—"घटही में घट राखु समोई"।

जन्मांतरवाद एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, जिसके बिना संसार का समाधान असंभव है। सद्गुरु कबीर जन्मांतरवाद के प्रबल पक्षधर हैं।

कहीं लौटने का कारण अवशेष वासना, इच्छादि हैं। हम बाजार जाते हैं, यदि सौदा पूरा लिये बिना ही किसी कारणवश घर लौट आते हैं, तो दूसरे दिन हमें पुनः बाजार जाना पड़ता है। जब तक हमारे खाने, भोगने, देखने, करने, पाने, शरीर में रहने आदि की वासना नहीं मिटती, तब तक हमें शरीर में आना ही पड़ेगा।

इसलिए सद्गुरु आज्ञा देते हैं कि हे मुमुक्षु! इस शरीर में रहते-रहते सारी वासनाएं नष्ट कर दो। यद्यपि ज्ञानी को भी जीवनपर्यन्त खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, लेना-देना तथा शरीर की सारी क्रियाएं करना पड़ता है; परन्तु वह केवल शरीर की रक्षा एवं निज-पर के कल्याण के लिए ही सारी क्रियाएं करता है। उसे कहीं भी आसक्ति नहीं होती।

देहाभिमानरहित वासना से एकदम छूटा हुआ जीवन ही अमृत जीवन है। यही परमानन्द है। यही जीवन्मुक्ति है। यही जीवन का सर्वोच्च शिखर है। मनुष्य को इस अवस्था में पहुंचकर कृतार्थ होना चाहिए। सद्गुरु ने अन्यत्र भी कहा है—"अबकी बार जो होय चुकाव, कहहिं कबीर ताकी पूरी दाव।" (बसन्त 7)।

धैर्य सफलता की कुंजी

ङ

ङङा निरखत निशिदिन जाई।
निरखत नैन रहै रतनाई॥
निमिष एक जो निरखै पावै।
ताहि निमिष में नैन छिपावै॥ 5॥

शब्दार्थ—निरखत=देखते हुए। निमिष=पलक मारने भर का समय, पल, क्षण।

भावार्थ—ङ अक्षर के माध्यम से सद्गुरु उपदेश करते हैं कि हे साधक! अपना लक्ष्य देखते हुए तुम्हारे रात-दिन बीतते जा रहे हैं; और देखते-देखते तुम्हारे नेत्र रक्तवर्ण हो जाते हैं। किन्तु जिस एक क्षण में तुम्हें लक्ष्य की प्राप्ति होना संभव होता है, उसी में तुम अपने नेत्र बंद कर लेते हो॥ 5॥

व्याख्या—यहां नेत्र से देखने का अभिधा (शाब्दिक) अर्थ न कर लक्षणा अर्थ करना चाहिए। अर्थात यहां कोई निरे चर्म-नेत्रों से देखने का अभिप्राय नहीं है। किन्तु अर्थ है कि साधक साधना में निरन्तर विलम्ब तक अथक श्रम करता है; परन्तु जब उसे सफलता मिलने का अवसर आता है, तब वह धैर्य छोड़ बैठता है।

कोई किसान खेत जोतता है, गोड़ता है, उसमें खाद-पानी डालता है, बीज डालता है, उसके बाद भी वह तीन-चार महीने तक उसकी कमाई, रक्षादि करता है, किन्तु यदि वह अंत में परिश्रम से घबराकर फसल को अंतिम पानी नहीं देता या उसकी बनैले पशु-पक्षियों एवं चोरों से रक्षा नहीं करता, तो उसे सफलता नहीं मिल सकती। बहुत काल तक अटूट परिश्रम करने पर भी लक्ष्य-प्राप्ति के पहले धैर्य छोड़ देने पर कार्य में सफलता नहीं हो सकती।

बहुत-से साधक इसी ढंग के होते हैं। वे थोड़े-थोड़े में घबराते हैं। वे कोई भी साधना शुरू करते हैं, तत्काल वांछित सफलता न मिलने के कारण उसे छोड़ बैठते हैं। यह उनके रजोगुणी स्वभाव एवं चंचलता का ही फल होता है।

ध्यान में बैठे, मन दो-चार बार भाग खड़ा हुआ, तो साधना छोड़ बैठे। अरे भाई! यदि मन बीस बार भागता है तो उसे इक्कीसवीं बार शांत करो। यदि वह सौ बार भागता है, तो एक सौ एकवीं बार उसे पकड़ो। धैर्य क्यों छोड़ते हो!

खेती, व्यापार, नौकरी, विद्याध्ययन, किसी कला का ज्ञान, स्वाध्याय, सेवा, साधना—किसी भी दिशा में सफलता तभी मिल सकती है जब न-उकताए हुए मन से धैर्यपूर्वक तब तक श्रम करता रहे जब तक सफलता न मिले।

भौतिक क्षेत्र की उपलब्धि के क्रम में तो यह भी है कि कभी-कभी पूर्ण परिश्रम करते रहने पर भी वांछित सफलता नहीं मिलती; किन्तु मानसिक शांति एवं स्वरूपस्थिति की सफलता में तो दो राय हैं ही नहीं। धैर्यपूर्वक सच्चाई से सेवा, स्वाध्याय एवं साधना में लगने पर सफलता होगी ही।

ग्रहण में सब परवश हैं तथा त्याग में सब स्वतन्त्र हैं। हमें अमुक वस्तु चाहिए, इसमें परतन्त्र हैं; क्योंकि संसार की वस्तुएं नाना प्राणी, पदार्थों एवं परिस्थितियों के अधीन हैं। किन्तु हमें कुछ नहीं चाहिए, इसमें क्या परतन्त्रता है! त्याग में शांति है, और त्याग करने में सभी व्यक्ति सब समय स्वतन्त्र हैं। अतः त्याग-मार्ग की साधना में घबराना अज्ञान ही है।

सद्गुरु विशाल साहेब ने ठीक ही कहा है—जिसके स्मरण में, ध्यान में, आचरण में, निश्चय में सुख-ही-सुख है उस स्वरूपस्थिति में क्या घाटा पड़ रहा है जो साधक अन्य प्रपंच में अपना मन लगावे। यथा—

जाहि मनन में सुख नितै, ध्यान क्रिया सुखध्येय।
घाटा तेहि में कौन है, जो औरहिं चित देय॥

(मुक्तिद्वार, निवृत्ति साहस शतक, साखी 112)

चेतन भौतिक चित्रों से भिन्न है

च

चचा चित्र रचो बड़ भारी।
चित्र छोड़ि तैं चेतु चित्रकारी॥
जिन्ह यह चित्र बिचित्र ह्वै खेला।
चित्र छाड़ि तैं चेतु चितेला॥ 6॥

शब्दार्थ—चित्र=कल्पनाएं, वस्तु-प्राणियों की मान्यताएं। चित्रकारी=चेतन जीव। विचित्र=भौतिक एवं मानसिक चित्रों से भिन्न चितेरा। चितेला=चितेरा, चित्र रचने वाला चेतन जीव।

भावार्थ—जीव की कल्पना ने खानी-वाणी के बड़े भारी चित्र रचकर खड़ा किये हैं। चित्र-रचयिता हे चेतन! दृश्य-चित्रों को छोड़कर तू सावधान हो जा। जिस विचित्र चेतन ने खिलाड़ी बनकर इन चित्रों का खेल खेला है, वह तू ही है। हे चेतने वाले चेतन मनुष्य! चित्रों की आसक्ति त्यागकर तू जग जा॥ 6॥

व्याख्या—पति, पत्नी, बच्चे, घर, जमीन, धन, जाति, पांति, नाम, रूप, परोक्ष ईश्वर, देवी, देवता, भूत, प्रेत, शकुन, अपशकुन आदि की मान्यताओं के नाना चित्र बनाकर जीव उन्हीं में उलझ गया है। "चित्र रचो बड़ भारी" बड़ा मार्मिक वचन है। हम मान्यताओं के बड़े-बड़े चित्र बना लेते हैं और उन्हीं चित्रों में अपनी वास्तविकता को भूल जाते हैं। हमारे असली चेहरे पर इतने नकली चेहरे चिपक गये हैं कि हमें अपने असली चेहरे का भान ही नहीं है।

एक ही आदमी किसी का साला है तो किसी का जीजा, किसी का पुत्र है तो किसी का पिता-पितामह, किसी का मित्र है तो किसी का शत्रु। नाना नाम, रूप, वर्ण, आश्रम के चेहरे इस पर चिपक गये हैं।

मेरा चेहरा, मेरा रूप केवल ज्ञान है। शेष सब काल्पनिक हैं। मैं ब्राह्मण हूं, मैं शूद्र हूं, मैं साधु हूं, मैं गृहस्थ हूं, मैं जीजा हूं, मैं साला हूं—आदि में 'मैं' और 'हूं' के बीच में जो कुछ आ जाता है ब्राह्मण, शूद्र, साधु, गृहस्थ, जीजा, साला आदि सब नकली तथा झूठे हैं। 'मैं हूं' इतना सच है।

अहम और इदम—दो तत्त्व हैं। अहम 'मैं' चेतन है तथा इदम 'यह' जड़ है। अहम चितेरा है तथा इदम चित्र है। चितेरा चेतन इदम के नाना चित्र बनाकर उन्हीं में शोक-मोह का अनुभव करता और भटकता है।

सद्गुरु कहते हैं "चित्र छोड़ि तैं चेतु चित्रकारी" हे चित्र रचने वाला चेतन! तू चित्रों को छोड़ दे, और अपने आप में सावधान हो जा।

मन चित्रपट है। उसी में सारे चित्र अंकित रहते हैं। मैं चेतन हूं। मैं ही चित्रों की कल्पना करता हूं। उनके रूप मैं ही गढ़ता हूं। मैं ही उनमें नाना भावनाओं के रंग भरता हूं। मैं ही उन चित्रों को सामने ला-लाकर उनमें रीझता-खीझता हूं। मैं चित्रों से विचित्र, विलक्षण एवं सर्वथा भिन्न हूं। मुझे चाहिए कि मैं अपने चैतन्य-तख्त पर आसीन होकर शांत रहूं। जब चित्र सामने आवें तो उन्हें केवल देखकर उनसे उदास रहूं। उनमें मिलूं नहीं। चित्रों में उलझूं नहीं।

होनहार सोई होता है

रचयिता—हेमंत हरिलाल साहू

ग्रह नक्षत्र शुभ लगन मुहूर्त, भूत प्रेत की बाधा
मत भटको इनके चक्कर में, इनको किसने है साधा

कितनों मुल्ला ज्योतिषी पंडितों को खाट में पचते देखा
खुद की किस्मत ना बदल सका, गैरों की बदलते भाग्य रेखा

है हिम्मत कोई रोक के देखे, इस प्रकृति चक्र के घेरा को
दुख-सुख, हानि-लाभ यश अपयश, जनम मरण के फेरा को

रैन दिवस चलता रहता है कभी सुबह तो कभी होगी शाम
परिवर्तन संसार का है नियम दुनिया है बस इसी का नाम

कर विचार देखो तो लगता जीवन किस्मत का खेला है
राजा-रंक, पीर पैगम्बर कोई गुरू कोई चेला है

कोई खूब धनधाम संवारे, होके दुनिया का दिवाना
वे गरीब बेचारे क्या करें जिनके घर नहीं खाने को दाना

फिर भी नींद भर सोता है, पुरुषारथ से जीवन ढोता है
सच्ची बादशाहत कोई इनसे सीखे, जिनका ना कुछ होता है

फकीरों का वो है फकीर, ज्ञानी से नहीं कम है
धन्य ऐसे महामानव को जिनके जीवन में नहीं गम है

कर्मक्षेत्र में रहते तत्पर दुख में पड़कर कभी ना रोता है
हेमंत जीवन पथ से नहीं विचलित होता होनहार सोई होता है

मन एक नदी है। उसके संकल्प-विकल्प उसकी तरंगें हैं। उसमें न बहना, किन्तु उससे बाहर बैठकर केवल उसको देखते रहना विवेकवान का काम है।

सद्गुरु कहते हैं, हे चित्रों के रचने वाले चितेरा चेतन! तू चित्रों को छोड़कर चेत जा! सारे चित्रों से अपना स्वरूप भिन्न समझ। खानी-वाणी के सारे चित्र तेरे कल्पित हैं। उनमें तू तदाकार मत हो। उससे अपने आप को अलग समझकर असंग हो जा। किसी ने कैसा अच्छा कहा है—

सम्हल कर बैठना जलवा मोहब्बत देखने वालों।
तमाशा खुद न बन जाना तमाशा देखने वालों॥

❑

सब धर्मों-मजहबों की एकता

लेखक—डॉ. श्री भगवानदास

जब कभी धर्मों-मजहबों की एकता की बात की जाती है तो लोग कई तरह के एतराज़ उठाते हैं। कुछ लोग तो यह कहते हैं कि आप सब मजहबों में से मोटी-मोटी एकता की बातें एक जगह जमा कर देते हैं, तो उन छोटी-छोटी बातों को भी साफ-साफ लिखिये जिनमें एक मजहब और दूसरे मजहब में फरक है। जो आदमी हर मजहब की हर छोटी-बड़ी बात को जानना जरूरी समझे उसके लिए यह कहना ठीक है। पर यह पंडितों और आलिमों की बहस है, दिमाग़ी चीज है, अमली और दिल की चीज़ नहीं। इसके अलावा छोटे और बारीक फरक़ों पर तो जरूरत से जियादा जोर दिया ही जा रहा है। इन फरक़ों पर अमल भी काफी हो रहा है। इससे इनसानी समाज को नुक़सान ही पहुंच रहा है। एक-सी और एकता की बातों से लोगों ने आंखें फेर रखी हैं जिससे दुनिया साफ घाटे में है।

दिमागी खयाल से देखें तब भी जिन बातों में एक मजहब और दूसरे मजहब में फरक है वह सब बातें ऊपरी हैं, यानी वह बुनियादी या जरूरी नहीं हैं, और जो बातें सब में पाई जाती हैं वही बुनियादी हैं, वही असल हैं। इसलिए उन बुनियादी चीज़ों पर जिनमें सब मजहबों की एक राय है जियादा जोर देना चाहिए। अभी तक इन पर काफी जोर नहीं दिया गया। इन्हीं बातों को सब मजहबों का दिल और सचाई या हक़ीक़त का इत्र समझना चाहिए। आजकल के जनतंत्र यानी जम्हूरियत के असूल पर भी जिन बातों में सब की या बहुतों की राय मिलती है, वह तो सारे इनसानी समाज का मज़हब है ही। इसलिए अमली तौर पर भी और इस धरती पर नेक समझ और अमन कायम करने के लिए भी यह काम बहुत ही बड़ा और जरूरी है।

कुछ लोगों को एक दूसरी तरह का एतराज है। यह वह लोग हैं जो अपने अक़ीदे के बड़े कट्टर होते हैं। कुदरती तौर पर इस तरह का हर आदमी यह समझता है कि मेरा ही धर्म, मेरा ही मजहब सबसे अनोखा और वही अकेला ठीक और सबसे अच्छा मजहब है। कुदरत ही ने शुरू से यह बात हर आदमी के अन्दर पैदा कर दी है कि वह चाहता है कि मैं सबसे पहला, अनोखा, अपूर्व और बेमिसाल माना जाऊं, दुनिया माने कि मेरे जैसा और कोई है ही नहीं। खुली या छिपी-दबी यह चाह सबके होती है। इनसानी जिन्दगी के सब पहलुओं में यह नज़र आती है। खाने-पीने में, माल-असबाब रखने में, ब्याह-शादी में, सिपहगरी में, यहां तक कि साहित्य या अदब में और साइन्स तक के मैदान में हमें यह चीज सब जगह दिखाई देती है। हर जगह आदमी के अन्दर लाग-डाट या दूसरों से बढ़-चढ़ कर रहने की इच्छा एक कुदरती चीज़ है। इसी से लगातार प्रेम और नफरत, मेल और जंग चलते रहते हैं। दुनयवी जिन्दगी में तो यह बात है ही, पर त्याग (तर्क) और तपस्या (जोहद) की ज़िन्दगी में भी यह चीज़ आखीर तक चमकती रहती है और मिटते-मिटते ही मिटती है। यही खुदी और खुदा, स्वार्थ और परमार्थ की वह खेंचातानी है जिसका नाम जिन्दगी है। यही बात जब मज़हब के मैदान में आती है तो आदमी कहता है—'मेरा ही मज़हब सबसे अच्छा है। मेरा मजहब बिलकुल अनोखा है, बिलकुल नया है, और सब मजहबों से अलग है। इससे पहले कोई ऐसा मजहब हुआ ही नहीं, मेरे मजहब में कोई बात किसी दूसरे मजहब से नहीं ली गयी, मेरा मज़हब ही आखिरी है, इससे अच्छा तो क्या इतना अच्छा भी कोई मजहब आगे होगा ही नहीं।'

यह वैसी ही बात है, जैसी लोग कहते कि मेरी नसल, मेरा वर्ण या रंग, मेरी जात जैसे ब्राह्मण, क्षत्री वगैरा, या अगर मैं मर्द हूं तो मर्द जात और अगर औरत हूं तो औरत जात ही सबसे ऊंची और अच्छी है, मेरी क़ौम को खुद भगवान ने सबमें से चुना है, ईश्वर ने मेरी जात वालों को ख़ास हक़ दिये हैं, मैं सूर्यवंशी हूं, मैं चन्द्रवंशी हूं, मेरी क़ौम समन्दर की लहरों पर हुकूमत करती है, मेरी क़ौम सबसे बढ़कर है, मेरे मुल्क के

पास सबसे ऊंचे आसमान को छूने वाले मकान हैं, सबसे बड़े हवाई जहाज हैं, सबसे ज़ियादा सोना है, मेरी हर चीज सबसे बढ़कर है, मेरे साम्राज्य पर कभी सूरज नहीं डूबता, मैं ब्रह्मा के मुख से निकला हूं, मैं सूरज का बेटा हूं, वग़ैरा वग़ैरा।

इस अहंकार को जीतने के लिए आदमी को बड़े-बड़े और कड़े तजरबों में से निकलना पड़ता है। बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेलकर आदमी इस बात को सीखता है कि जबकि इस तरह की थोड़ा-बहुत खुदी छोटे जानवरों या नई-नई क़ौमों की बढ़वार के लिए जरूरी होती है, इससे आगे बढ़ते ही यह खुदी आदमी के अपने लिए और दूसरों के लिए दोनों के लिए बरबादी का कारण बन जाती है। तब जाकर आदमी की रूह सच्चे परमार्थ, सबके भले, बरदाश्त, धीरज, रवादारी, नेकी और हमदरदी की तरफ मुड़ती है। वह देखती है कि हक़ीक़त या सचाई सबके अन्दर है। बड़े-छोटे, बच्चे-बूढ़े, कमज़ोर-ताकतवर में फरक तो हैं पर यह सब फरक दिखावे के और एक ख़ास हद के अन्दर ही हैं। इन पर जियादा जोर देना बुरा है। आदमी को आदमी बनने के लिए न अपनी ताकत का ज़रा सा भी घमंड होना चाहिए और न दूसरे की कमजोरी को जरा भी नफरत की निगाह से देखना चाहिए।

कोई आदमी यह दावा नहीं कर सकता कि मेरा शरीर ऐसे जर्रों या ऐसे परमाणुओं का बना हुआ है जो पहले कभी कहीं थे ही नहीं, यानी जो मेरे लिए ही वजूद में आए। जाहिर है कि हर शरीर का हर जर्रा अनगिनत जिस्मों में से होकर निकल चुका है और इस शरीर के मिट जाने के बाद भी अनगिनत शरीरों में से निकलेगा और निकलता रहेगा। इस पर भी हर दो आदमियों के रूपों में कुछ न कुछ फरक होता ही है, यह दूसरी बात है। इसी तरह हर दिमाग का हर ख्याल, हर जजबा, हर भाव दूसरे अनगिनत दिमाग़ों में से होकर निकल चुका है और अनगिनत दिमागों में से होकर निकलता रहेगा। उसकी गढ़त और बनावट में फ़रक पड़ता रहता है यह अलग बात है। इसी फरक से हर एक का दिमाग़ अपना-अपना दिमाग़ है, वैसे ही जैसे हर एक का शरीर अपना-अपना शरीर है। हम इन फरकों को भी समझें और मानें। इन्हीं फ़रक़ों से मैं, तू और वह वजूद में आते हैं। पर हम इन फरकों को बदलने वाली चीज, आनी-जानी चीज समझें, और उस हक़ीक़त को जो सब में और सबके अन्दर रमी हुई है जियादा बड़ी, जियादा टिकाऊ और जियादा बुनियादी समझें। खुदी की भी अपनी कीमत है, पर उसे बेजा महत्त्व देना हमें मिटा देगा। सबके भले की यानी सबके अन्दर काम करने वाली जान की हमें जियादा कद्र करनी चाहिए, तब ही 'हर आदमी सबके लिए और सब हरेक के लिए' का असूल चल सकेगा। सिर्फ इसी से समाजी जिन्दगी, मिली-जुली जिन्दगी, या अलग-अलग 'मैं' और 'तू' की जगह एक 'हम' कायम हो सकेगा और हम सबका भला मुमकिन होगा।

कमी यह है कि अभी तक हम में से अधिकतर के दिमाग उस कमउमरी या लड़कपन की हालत में हैं जिसमें आदमी को अपने 'अनोखेपन' में जियादा मजा आता है और अपने को कुल का यानी सारी इनसानी क़ौम के जिस्म का एक हिस्सा समझने में उतना आनन्द नहीं आता। लेकिन यह ऊंची प्यास भी हर दिल के अन्दर मौजूद है। हमने अभी उसे पहचाना नहीं है। कोई आदमी भी सदा बिलकुल अकेला रहना नहीं चाहता। तब फिर उसका अनोखापन कौन देखेगा और मानेगा? आदमी दूसरों से मिलना चाहता ही है। दूसरों से बंधना चाहता ही है। यही प्यास जब और ऊंची और गहरी हो जाती है तो आदमी की रूह को उस 'रूहे कुल' से जा बांधती है जहां पहुंचकर आदमी अपनी हक़ीक़त और अपने खोए हुए रुतबे को पहचानता है। तभी उसे असली 'अपनापन' मिलता है, तभी पूरा और सच्चा आनन्द मिलता है।

पर जिस तरह हम अलग-अलग आदमियों के वजूद को नहीं मिटा सकते उसी तरह अलग-अलग मजहबों के वजूद को मिटा देने की कोशिश भी फ़ज़ूल है। लेकिन हमें इन अलग-अलग मजहबों के अलगपन को कम करना है, जहां तक हो सके इनमें मेल बैठाना है और दुनिया को, जैसे और मामलों में वैसे ही मजहब

के मामले में भी एकता की तरफ ले जाना है। लोगों के दिलों को धीरे-धीरे इधर मोड़ना है। यह काम नामुमकिन नहीं है। यह भी उतना ही कुदरती और जरूरी है जितना खुदी का होना बल्कि उससे कहीं ज़ियादा जरूरी है।

कुछ पढ़े-लिखे विद्वान इस बात को साबित करने के चक्कर में पड़ जाते हैं कि बाद के मजहबों ने पहले के मजहबों से नक़ल की है। की है या नहीं इसका पता लगाने का महत्त्व थोड़े से विद्वानों के लिए कुछ हो सकता है। पर कहीं जियादा जानने और समझने की चीज आम लोगों के लिए और सबके लिए यह है कि अगर मजहबों ने एक दूसरे से नक़ल की भी है तो क्यों की है। क्या इसका यह सबब नहीं है कि सब मज़हब और सब सचाई की बात करने वाले 'एक ही अनादि अनन्त सचाई' की नकल करते रहे हैं? किसी के सामने और कुछ नक़ल करने के लिए था ही नहीं। नई नसलें पुरानी नसलों में से पैदा होती हैं। नई क़ौमें पुरानी क़ौमों और उनकी नौआबादियों में से उग पड़ती हैं। पुराने दियों से नये चिराग़ रोशन किये जाते हैं। पर वह जान, वह ज्योति (नूर), वह शक्ति (कुदरत) जो इन सब बदलती हुई सूरतों में से झलक रही है और इन्हें चला रही है, इन सबसे ऊपर है, इन सब में से होकर बह रही है। वही इन सब शकलों को पैदा करती है। जिस चीज़ की नक़ल की जावे वह अगर हक़ है, सचाई है, तो नक़ल करना इज़्ज़त की बात है और फर्ज है, और जो कोई नई, अनोखी चीज़ पैदा की जा रही है वह अगर 'झूठ' है तो अनोखा या मौलिक होना जिल्लत की बात है। अनोखापन या नयापन सिर्फ फ़ानी (नश्वर) चीजों में ही हो सकता है। और फ़ानी चीजें सब बातिल (असत्य) होती हैं। सचाई में नयापन नहीं हो सकता, क्योंकि जो हमेशा से है और हमेशा रहेगा वही सच है। वही है। उसकी नक़ल करनी चाहिए और नक़ल ही हो सकती है। यह नक़ल बड़ी मेहनत से करनी चाहिए, यही बड़ी बात है। सचाई का 'कापी राइट' नहीं होता। उसमें किसी का इजारा नहीं है। पर ठीक बात तो यह है कि किसी मजहब के कायम करने वाले को, किसी सच्ची बड़ी रूह को, कभी 'नकल' करने की जरूरत ही नहीं पड़ी। आध्यात्मिक जीवन (रूहानी जिन्दगी) का दरिया हमेशा बहता रहता है। जिस किसी को रूहानी प्यास होती है वह अपना डोल उसमें डुबोकर भर सकता है। वही एक सचाई अलग-अलग अपने आजाद तरीके से हर नये खोजी, मुतलाशी, नये पैग़म्बर, नये ऋषि और नये तीर्थंकर के सीने में अन्दर से उबलती और जोश मारती रहती है।

इस एकता को समझने के लिए दूसरों या दूसरे धर्मों की बेक़दरी करने, उन्हें छोटा दिखाने या उनका मजाक उड़ाने की जगह, उन्हें समझना, उनकी क़दर करना और उनकी इज्जत करना जियादा अच्छा है। दूसरों की बुराई या कमी को देखने की निस्बत उनकी अच्छी-अच्छी बातों को देखना ज़ियादा फ़ायदे का है। एक दूसरे के फ़रक़ों को निगाह में रखने की निस्बत मेल की बातों पर निगाह रखना जियादा काम का है। लड़ने की निस्बत सुलह से रहना जियादा अच्छा है।

फ़लसफ़े में और साइन्स में यानी दर्शन में और विज्ञान में, दोनों में हर बात और हर क़ायदे को समझने के लिए उससे पहले की दूसरी बातों और दूसरे क़ायदों को जानने की ज़रूरत पड़ती है। यह सिलसिला बराबर पीछे को चलता रहता है, यहां तक कि इसका कोई सिरा दिखाई नहीं देता। इस तरह चलते-चलते आखीर में हम उस अनन्त आत्मा, उस रूहे कुल, उस परम चेतन तक पहुंच जाते हैं जिसकी चेतनता में हमारी जागने की हालत, सपने की हालत और गहरी नींद की हालत तीनों समा जाती हैं। उस रूहे कुल में ही कायनात (सृष्टि) की सारी शकलें बनती और बिगड़ती रहती हैं। सब माही और रूहानी, जड़ और चेतन क़ानून उसी के बनाये और उसी के मातहत हैं। उसी अनन्त आत्मा, उसी रूहे कुल में जाकर सब मज़हब, सब फलसफे, सब साइन्स, सब क़ानून और सब हुनर मिल जाते हैं। उसी से वह सब फिर निकलते हैं। यह सिलसिला फिर बेअन्त दिखाई देता है। जब हम उस सचाई तक पहुंच जाते हैं तब हमें सब सवालों का जवाब मिल जाता है, हमारे

सब शक दूर हो जाते हैं, हम आखिरी संगम, आखिरी समन्वय, मजम-उल-बहरैन तक पहुंच गये। हमारी आत्मा को पूरी शान्ति, रूह को पूरा इत्मीनान मिल जाता है।

इस संगम पर पहुंचे बग़ैर इनसानी समाज को न इस दुनिया में सुख मिल सकता है, न दूसरी दुनिया में। हमारी मज़हबी जंगें, हमारी फ़िरकेबाराना लड़ाइयां, हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े, हिन्दुओं-हिन्दुओं के झगड़े, जात-जात के झगड़े, शिया-सुन्नी के झगड़े, अरबों और यहूदियों के झगड़े, यहूदियों और जरमनों के झगड़े, अगली-पिछली लड़ाइयां, सबकी असली वजह असल में इसी एक मेल की कमी में है, यानी इसी एकता को अपने अन्दर न समझ सकने में है। जिस दरजे तक भी हम इसे अपने अन्दर पैदा कर सकें और समझ सकें उसी दरजे तक हम इन मुसीबतों से बच सकते हैं।

जितनी रूहानी, दिमाग़ी और जिस्मानी बारूदें हमने जमा कर ली हैं उन सबको चाहे एक दूसरे को मारकाट कर और चाहे सचाई और दूरन्देशी से एक दूसरे को समझकर, और एक दूसरे से राज़ी होकर, जब हम खत़्म कर देंगे तब सारी इनसानी जिन्दगी और आपस के सम्बन्धों को नये सिरे से और नये ढंग से क़ायम करके, हमें इस तरह का एक बहुत बड़ा संगम बनाना ही पड़ेगा, नया मेलजोल क़ायम करना पड़ेगा, एक ऐसे नये और ज़बरदस्त संगठन को रूप देना होगा जिसमें सब खप जायें और जिसमें हमारी इनसानी जिन्दगी के सब पहलू रूहानी और माद्दी शख्सी और समाजी समा जावें।

इसी का एक नया तजरबा रूस में हो रहा है। अगर वह कामयाब हो गया तो हर जगह उसकी नक़ल होने लगेगी। अगर वह कुछ ख़ास बातों में नाकाम रहा—और उसके नाकाम होने का ही डर है, क्योंकि उसमें वह जहरों को चूसने वाली, भरोसा पैदा करने वाली, सचाई और हमदरदी को जनम देने वाली रचनात्मक रूहानी खुराक नहीं है—तो फिर दूसरा रास्ता एक ऐसे विश्वव्यापक, आलमगीर मज़हब, मजहबे इनसानियत, मानव धर्म को कायम करना है जो सब अलग-अलग धर्मों को मिलाकर एक कर दे, जिसमें सबके दिल और दिमाग़ मिल जावें, जो सब को रूहानी खुराक दे, जिससे बिखराव और फूट के सब तरह-तरह के जहर इनसानी क़ौम के जिस्म से निकलकर बाहर हो जावें, इस बड़े जिस्म के सब रंग पट्टे एक दूसरे से गठते चले जावें। प्रेम बढ़े, भरोसा बढ़े, और सारा इनसानी समाज एक खानदान माना जाने लगे। इसी से समाजी संगठन की वह ठीक-ठीक तरतीब पैदा होगी जिसमें सब अपने-अपने स्वभाव और शक्ति के अनुसार सबके भले के कामों में लग सकेंगे।

सब मुल्कों और सब क़ौमों की पाक किताबें हमें इसी का उपदेश दे रही हैं और इसी तरफ ले जाना चाह रही हैं। यह कोई नई राह नहीं है। धर्म या मजहब को अगर जिन्दा रहना है तो उसे इनसानी क़ौम के लिए इस दुनिया में और दूसरी दुनिया में जियादा से जियादा सुख और जियादा से जियादा तरक़्क़ी के सामान पैदा कर के दिखाने होंगे।

दीन, धर्म या मजहब के बाहरी और ग़लत रूपों पर जोर देना—और यही मजहब-मजहब में फ़रक करने वाली चीजें हैं और दीन-धर्म की उस असलियत को सामने न रखना—जो सब मजहबों की असलियत है—इसी का नतीजा है कि आज दुनिया में अपनी-अपनी हुकूमत को क़ायम रखने के लिए बेचैन हाकिम, और अपने-अपने बड़प्पन को बनाये रखने की फ़िक्र में बड़े-बड़े नेता न सिर्फ अंधेरे में राह टटोल रहे हैं बल्कि 'अंधों को राह दिखाने वाले अंधों' की तरह राजकाजी जंगों, माली लड़ाइयों और फ़िरकेवाराना मारकाट के जरिये इस दुनिया को भयंकर नरक बनाए हुए हैं, और जिनका भला करना चाहते हैं, या कम से कम करने का दावा करते हैं, उन्हीं के जिस्मों, इख़लाक़ और रूहों सब को बरबाद कर रहे हैं।

कोई यह नहीं कह सकता कि उसे 'सच्ची राह' दिखाई नहीं देती। हमने खुद अपनी आंखें उस राह से

फेर रखी हैं। सच्चे दीन-धर्म का सूरज अब भी पूरी तेजी के साथ चमक रहा है। उसकी किरणें बराबर चारों तरफ़ फैल रही हैं। इन राजकाजी हाकिमों और नेताओं को सिर्फ अपनी आंखों पर से पट्टियां खोलकर फेंकनी हैं। यह पट्टियां हैं अहंकार की, अपनी-अपनी राष्ट्रीयता की ढपली की—मेरा राष्ट्र, मेरी क़ौम, मेरा दीन, मेरा धर्म, इन पट्टियों को उतारकर उसकी जगह इन्हें मानवता, इनसानियत की ऐनकें लगानी हैं। ऐसा करते ही उन्हें अपनी और सबकी सुख-शान्ति का रास्ता साफ़ दिखाई दे जायेगा। हमारी सब बड़ी-बड़ी मजहबी किताबें बार-बार जगह-जगह और साफ-साफ बता रही हैं कि वह रास्ता क्या है और इनसानी समाज को उसके असली भले के लिए किस तरह संगठित करना और चलाना चाहिए।

अगर सब अलग-अलग धर्मों के इस तरह के बड़े-बड़े विद्वान जिनके दिमाग़ साफ और दिल बड़े हों और जो सबके भले को सचाई से सोचते हों मिलकर छोट-बड़े दरजों के लिए इस तरह की किताबें तैयार कर दें जिनमें सब अलग-अलग धर्मों की किताबों से एक-सी बातें लेकर इस आलमगीर विश्वव्यापी मानव धर्म, मजहबे इनसानियत के सब मोटे-मोटे असूल बयान किये गये हों, और उन पर अमल की मिसाल भी उन्हीं धर्मों की किताबों से लेकर दी गयी हों, तो दुनिया का और खास कर आगे आने वाली नसलों का बहुत बड़ा कल्याण हो सकता है। इस तरह की किताबें सब जबानों में, सब मजहबों के लोगों में, सब स्कूलों और कालिजों में पढ़ाई और फैलाई जा सकती हैं।.....

दुनिया की इस समय जो हालत हो रही है और दुनिया भर के लोग जिस तरह की मुसीबतों में फंसे हुए हैं उससे जाहिर है कि नेकी, सचाई और रोशनी की ताक़तों को बदी, झूठ और अंधेरे की ताक़तों के साथ अभी बहुत दिनों तक और बड़ी कड़ी लड़ाई लड़नी है। यह दूसरी तरह की ताक़तें ही इनसानी क़ौम की असली दुश्मन हैं। ज़रूरत इस बात की है कि सब मुल्कों में बहुत-से सच्चे कार्यकर्ता इस काम को अपने हाथों में लें। इसके बिना आर्थिक या राजकाजी अमन भी दुनिया में क़ायम नहीं हो सकता।

इसके लिए हमें एक ऐसे व्यापक आलमगीर मजहब की ज़रूरत है जिसका साफ अपना रंग-रूप हो, जिसमें इधर-उधर से लेकर चीजें जोड़ न ली गयी हों बल्कि जो आप एक क़ुदरती और जिन्दा चीज की तरह दिखाई दे। सब अलग-अलग मजहबों के अलग-अलग बाहरी रूपों में से यह चीज़ उसी तरह साफ़ चमकती हुई दिखाई दे जिस तरह सब अलग-अलग आदमियों के अलग-अलग शरीरों में से एक इनसानी जिस्म साफ़ दिखाई देता है। फिर जिस तरह एक इनसानी जिस्म के होते हुए अलग-अलग आदमी भी होते हैं, और उनसे कुल इनसानी क़ौम का मान और खुशहाली बढ़ सकती हैं उसी तरह इस एक व्यापक आलमगीर दीन या धर्म के होते हुए, जो सबका धर्म हो, लोगों के अलग-अलग रास्ते, अलग-अलग विश्वास और अलग-अलग रीतरिवाज भी इनसानी क़ौम की शोभा और खुशहाली को बढ़ा सकते हैं।

हमें अपने सब स्कूलों और कालेजों में लड़कों और लड़कियों को धर्म की शिक्षा जरूर देनी चाहिए, पर वह शिक्षा सच्चे धर्म या सदाचार की शिक्षा हो। वह शिक्षा सब मतों और मजहबों के लड़के-लड़कियों को एक-सी दी जावे। वह तालीम उदार हो, रवादारी की हो। उसका सम्बन्ध केवल किसी एक अलग मजहब से न हो। उसमें सब मजहब शामिल हों।

एक दूसरे के खिलाफ दिखाई देने वाले मजहब भी शामिल हो। और इस तरह शामिल हो कि किसी के खिलाफ कोई बात न हो। किसी से दूसरे की मुखालफत न झलके। इस तालीम का मकसद हो बच्चों के चरित्र को, उनके चलन को मजबूत और ऊंचा बनाना। उन्हें नेक बनाना। उन्हें अपनी तरफ और दूसरों की तरफ अपने कर्ज को समझाना और उस कर्ज के पूरा करने के काबिल बनाना, उन्हें ईमानदार, प्रेमी, सच्चा मेहनती और इन्साफपसन्द बनाना, यानी उन्हें अच्छा शरीर और अच्छा इनसान बनाना। इसका यही

तरीका है कि उन्हें सब मजहबों के वह बुनियादी असूल बताए जायें जिनके अनुसार हममें से हर एक का जीवन चलना चाहिए, इस तरह की तालीम में वह सब बातें चमकाई जायेंगी और सिखाई जायेंगी जिनमें सब मजहब एक हैं और वह सब बातें अलग रखी जायेंगी जो मजहब-मजहब में तफरका पैदा करती हैं। आखीर में इस तरह की तालीम में यह कोशिश की जावेगी कि लड़के-लड़कियों में एक दूसरे की तरफ और सब मजहबों की तरफ उदारता हो जिससे वह एक दूसरे की अलग-अलग मान्यताओं या रीतरिवाजों के फरकों का भी आदर कर सके...।

इस के बाद हमें चाहिए कि अदब के साथ सब मुल्कों, सब क़ौमों और सब जमानों के ऋषियों, पैगम्बरों, बुद्धों, मसीयाहों, नबियों, रसूलों, अवतारों, तीर्थंकरों, अर्हतों, गुरुओं और रूहानी रास्ता दिखाने वालों को याद करें और सलाम करें जिन्होंने बार-बार सच्ची तालीम देकर इनसानी समाज के दिलों में उस 'एकता' को जगाए रखने की कोशिश की।

आखीर में हमें उन सब भाई, बहनों, सोसाइटियों को नमस्कार करना चाहिए जो अपनी-अपनी जगह इस एकता को बनाए रखने, सबका ध्यान सबकी असलियत की तरफ दिलाने और बिना देश, जात, मजहब, रंग, क़ौम, नसल या किसी तरह के फरक के एक आलमगीर, व्यापक इनसानी भाईचारे को कायम रखने और मजबूत करने की कोशिश में लगे हुए हैं। बिना इस एकता के हम उस दुनिया की, अल्लाह की एकता को नहीं पा सकते!

('सब धर्मों की बुनियादी एकता' से साभार)

कहानी

धिक्कार

लेखक—मुंशी श्री प्रेमचन्द

1

ईरान और यूनान में घोर संग्राम हो रहा था। ईरानी दिन-दिन बढ़ते जाते थे और यूनान के लिए संकट का सामना था। देश के सारे व्यवसाय बंद हो गये थे, हल की मुठिया पर हाथ रखने वाले किसान तलवार की मुठिया पकड़ने के लिए मजबूर हो गये, डंडी तौलने वाले भाले तौलते थे। सारा देश आत्म-रक्षा के लिए तैयार हो गया था। फिर भी शत्रु के कदम दिन-दिन आगे ही बढ़ते आते थे। जिस ईरान को यूनान कई बार कुचल चुका था, वही ईरान आज क्रोध के आवेग की भांति सिर पर चढ़ा आता था। मर्द तो रणक्षेत्र में सिर कटा रहे थे और स्त्रियां दिन-दिन की निराशाजनक खबरें सुनकर सूखी जाती थीं। क्योंकर लाज की रक्षा होगी? प्राण का भय न था, सम्पत्ति का भय न था, भय था मर्यादा का। विजेता गर्व से मतवाले होकर यूनानी ललनाओं को घूरेंगे, उनके कोमल अंगों को स्पर्श करेंगे, उनको कैद कर ले जायेंगे! उस विपत्ति की कल्पना ही से इन लोगों के रोयें खड़े हो जाते थे।

आखिर जब हालत बहुत नाजुक हो गयी तो कितने ही स्त्री-पुरुष मिलकर डेल्फी के मंदिर में गये और प्रश्न किया—देवी, हमारे ऊपर देवताओं की यह वक्र-दृष्टि क्यों है? हमसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ है? क्या हमने नियमों का पालन नहीं किया, कुरबानियां नहीं कीं, व्रत नहीं रखे? फिर देवताओं ने क्यों हमारे सिरों से अपनी रक्षा का हाथ उठा लिया?

पुजारिन ने कहा—देवताओं की असीम कृपा भी देश को द्रोही के हाथ से नहीं बचा सकती। इस देश में अवश्य कोई-न-कोई द्रोही है। जब तक उसका वध न किया जायेगा, देश के सिर से यह संकट न टलेगा।

'देवी, वह द्रोही कौन है?'

'जिस घर से रात को गाने की ध्वनि आती हो, जिस घर से दिन को सुगंध की लपटें आती हों, जिस पुरुष की आंखों में मद की लाली झलकती हो, वही देश का द्रोही है।'

लोगों ने द्रोही का परिचय पाने के लिए और कितने ही प्रश्न किये; पर देवी ने कोई उत्तर न दिया।

2

यूनानियों ने द्रोही की तलाश करना शुरू किया। किसके घर में से रात को गाने की आवाजें आती हैं। सारे शहर में संध्या होते स्यापा-सा छा जाता था। अगर कहीं आवाजें सुनायी देती थीं तो रोने की; हंसी और गाने की आवाज कहीं न सुनायी देती थी।

दिन को सुगंध की लपटें किस घर से आती हैं? लोग जिधर जाते थे, किसे इतनी फुरसत थी कि घर की सफाई करता, घर में सुगंध जलाता; धोबियों का अभाव था, अधिकांश लड़ने के लिए चले गये थे, कपड़े तक न धुलते थे; इत्र-फुलेल कौन मलता!

किसकी आंखों में मद की लाली झलकती है? लाल आंखें दिखाई देती थीं; लेकिन यह मद की लाली न थी, यह आंसुओं की लाली थी। मदिरा की दुकानों पर खाक उड़ रही थी। इस जीवन और मृत्यु के संग्राम में विलास की किसे सूझती! लोगों ने सारा शहर छान मारा लेकिन एक भी आंख ऐसी नजर न आयी जो मद से लाल हो।

कई दिन गुजर गये। शहर में पल-पल पर रणक्षेत्र से भयानक खबरें आती थीं और लोगों के प्राण सूख जाते थे।

आधी रात का समय था। शहर में अंधकार छाया हुआ था, मानो श्मशान हो। किसी की सूरत न दिखाई देती थी। जिन नाट्यशालाओं में तिल रखने की जगह न मिलती थी, वहां सियार बोल रहे थे। जिन बाजारों में मनचले जवान अस्त्र-शस्त्र सजाये ऐंठते फिरते थे, वहां उल्लू बोल रहे थे। मंदिरों में न गाना होता था न बजाना। प्रासादों में अंधकार छाया हुआ था।

एक बूढ़ा यूनानी जिसका इकलौता लड़का लड़ाई के मैदान में था, घर से निकला और न-जाने किन विचारों की तरंग में देवी के मंदिर की ओर चला। रास्ते में कहीं प्रकाश न था, कदम-कदम पर ठोकरें खाता था; पर आगे बढ़ता चला जाता। उसने निश्चय कर लिया कि या तो आज देवी से विजय का वरदान लूंगा या उनके चरणों पर अपने को भेंट कर दूंगा।

3

सहसा वह चौंक पड़ा। देवी का मंदिर आ गया था। और उसके पीछे की ओर किसी घर से मधुर संगीत की ध्वनि आ रही थी। उसको आश्चर्य हुआ। इस निर्जन स्थान में कौन इस वक्त रंगरेलियां मना रहा है। उसके पैरों में पर लग गये, मंदिर के पिछवाड़े जा पहुंचा।

उसी घर से जिसमें मंदिर की पुजारिन रहती थी, गाने की आवाजें आती थीं! वृद्ध विस्मित होकर खिड़की के सामने खड़ा हो गया। चिराग तले अंधेरा! देवी के मंदिर के पिछवाड़े यह अंधेर?

बूढ़े ने द्वार झांका; एक सजे हुए कमरे में मोमबत्तियां झाड़ों में जल रही थीं, साफ-सुथरा फर्श बिछा था और एक आदमी मेज पर बैठा हुआ गा रहा था। मेज पर शराब की बोतल और प्यालियां रखी हुई थीं। दो गुलाम मेज के सामने हाथ में भोजन के थाल लिये खड़े थे, जिसमें से मनोहर सुगंध की लपटें आ रही थीं।

बूढ़े यूनानी ने चिल्लाकर कहा—यही देशद्रोही है, यही देशद्रोही है!

मंदिर की दीवारों ने दुहराया—द्रोही है!

बगीचे की तरफ से आवाज आयी—द्रोही है!

मंदिर की पुजारिन ने घर में से सिर निकालकर कहा—हां, द्रोही है!

यह देशद्रोही उसी पुजारिन का बेटा पासोनियस था। देश में रक्षा के जो उपाय सोचे जाते, शत्रुओं का दमन करने के लिए जो निश्चय किये जाते, उनकी सूचना यह ईरानियों को दे दिया करता था। सेनाओं की प्रत्येक गति की खबर ईरानियों को मिल जाती थी और उन प्रयत्नों को विफल बनाने के लिए वे पहले से तैयार हो जाते थे। यही कारण था कि यूनानियों को जान लड़ा देने पर भी विजय न होती थी। इसी कपट से कमाये हुए धन से वह

भोग-विलास करता था। उस समय जबकि देश में घोर संकट पड़ा हुआ था, उसने अपने स्वदेश को अपनी वासनाओं के लिए बेच दिया। अपने विलास के सिवा और किसी बात की चिंता न थी, कोई मरे या जिये, देश रहे या जाये, उसकी बला से। केवल अपने कुटिल स्वार्थ के लिए देश की गरदन में गुलामी की बेड़ियां डलवाने पर तैयार था। पुजारिन अपने बेटे के दुराचरण से अनभिज्ञ थी। वह अपनी अंधेरी कोठरी से बहुत कम निकलती, वहीं बैठी जप-तप किया करती थी। परलोक-चिंतन में उसे इहलोक की खबर न थी, मनेन्द्रियों ने बाहर की चेतना को शून्य-सा कर दिया था। वह इस समय भी कोठरी के द्वार बंद किये, देवी से अपने देश के कल्याण के लिए वन्दना कर रही थी कि सहसा उसके कानों में आवाज आयी—यही द्रोही है, यही द्रोही है!

उसने तुरंत द्वार खोलकर बाहर की ओर झांका, पासोनियस के कमरे से प्रकाश की रेखाएं निकल रही थीं और उन्हीं रेखाओं पर संगीत की लहरें नाच रही थीं। उसके पैर-तले से जमीन-सी निकल गयी, कलेजा धक्-से हो गया। ईश्वर! क्या मेरा बेटा देशद्रोही है?

आप-ही-आप, किसी अंतःप्रेरणा से पराभूत होकर वह चिल्ला उठी—हां, यही देशद्रोही है!

4

यूनानी स्त्री-पुरुषों के झुंड-के-झुंड उमड़ पड़े और पासोनियस के द्वार पर खड़े होकर चिल्लाने लगे—यही देशद्राही है!

पासोनियस के कमरे की रोशनी ठंडी हो गयी, संगीत भी बंद था; लेकिन द्वार पर प्रतिक्षण नगरवासियों का समूह बढ़ता जाता था और रह-रह कर सहस्र कंठों से ध्वनि निकलती थी—यही देशद्रोही है!

लोगों ने मशालें जलायी और अपने लाठी-डंडे संभालकर मकान में घुस पड़े। कोई कहता था—सिर उतार लो। कोई कहता था—देवी के चरणों पर बलिदान कर दो। कुछ लोग उसे कोठे से नीचे गिरा देने का आग्रह कर रहे थे।

पासोनियस समझ गया कि अब मुसीबत की घड़ी सिर पर आ गयी। तुरंत जीने से उतरकर नीचे की ओर भागा। और कहीं शरण की आशा न देखकर देवी के मंदिर में जा घुसा।

अब क्या किया जाये? देवी की शरण जाने वाले को अभय-दान मिल जाता था। परम्परा से यही प्रथा थी? मंदिर में किसी की हत्या करना महापाप था।

लेकिन देशद्रोही को इतने सस्ते कौन छोड़ता? भांति-भांति के प्रस्ताव होने लगे—

'सूअर का हाथ पकड़कर बाहर खींच लो।'

'ऐसे देशद्रोही का वध करने के लिए देवी हमें क्षमा कर देंगी।'

'देवी, आप उसे क्यों नहीं निगल जाती?'

'पत्थरों से मारो, पत्थरों से; आप निकलकर भागेगा।'

'निकलता क्यों नहीं रे कायर! वहां क्या मुंह में कालिख लगाकर बैठा हुआ है?'

रात भर यही शोर मचा रहा और पासोनियस न निकला। आखिर यह निश्चय हुआ कि मंदिर की छत खोदकर फेंक दी जाये और पासोनियस दोपहर की धूप और रात की कड़ाके की सरदी में आप ही आप अकड़ जाये। बस फिर क्या था। आन की आन में लोगों ने मंदिर की छत और कलस ढा दिये।

अभागा पासोनियस दिन भर तेज धूप में खड़ा रहा। उसे जोर की प्यास लगी; लेकिन पानी कहां? भूख लगी, पर खाना कहां? सारी जमीन तवे की भांति जलने लगी; लेकिन छांह कहां? इतना कष्ट उसे जीवन भर में न हुआ था। मछली की भांति तड़पता था और चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को पुकारता था; मगर वहां कोई उसकी पुकार सुनने वाला न था। बार-बार कसमें खाता था कि अब फिर मुझसे ऐसा अपराध न होगा; लेकिन कोई उसके निकट न आता था। बार-बार चाहता था कि दीवार से टकरा कर प्राण दे दे; लेकिन यह आशा रोक

देती थी कि शायद लोगों को मुझ पर दया आ जाये। वह पागलों की तरह जोर-जोर से कहने लगा—मुझे मार डालो, मार डालो, एक क्षण में प्राण ले लो, इस भांति जला-जला कर न मारो। ओ हत्यारो, तुमको जरा भी दया नहीं।

दिन बीता और रात—भयंकर रात—आयी। ऊपर तारागण चमक रहे थे मानो उसकी विपत्ति पर हंस रहे हों। ज्यों-ज्यों रात बीतती थी देवी विकराल रूप धारण करती जाती थी। कभी वह उसकी ओर मुंह खोलकर लपकती, कभी उसे जलती हुई आंखों से देखती। उधर क्षण-क्षण सरदी बढ़ती जाती थी, पासोनियस के हाथ-पांव अकड़ने लगे, कलेजा कांपने लगा। घुटनों में सिर रखकर बैठ गया और अपनी किस्मत को रोने लगा। कुरते को खींचकर कभी पैरों को छिपाता, कभी हाथों को, यहां तक कि इस खींचातानी में कुरता भी फट गया। आधी रात जाते-जाते बर्फ गिरने लगी। दोपहर को उसने सोचा गरमी ही सबसे कष्टदायक है। ठंड के सामने उसे गरमी की तकलीफ भूल गयी।

आखिर शरीर में गरमी लाने के लिए एक हिकमत सूझी। वह मंदिर में इधर-उधर दौड़ने लगा। लेकिन विलासी जीव था, जरा देर में हांफ कर गिर पड़ा।

5

प्रातःकाल लोगों ने किवाड़ खोले तो पासोनियस को भूमि पर पड़े देखा। मालूम होता था, उसका शरीर अकड़ गया है। बहुत चीखने-चिल्लाने पर उसने आखें खोली; पर जगह से हिल न सका। कितनी दयनीय दशा थी, किंतु किसी को उस पर दया न आयी। यूनान में देशद्रोह सबसे बड़ा अपराध था और द्रोही के लिए कहीं क्षमा न थी, कहीं दया न थी।

एक—अभी मरा नहीं है?

दूसरा—द्रोहियों को मौत नहीं आती!

तीसरा—पड़ा रहने दो, मर जायेगा!

चौथा—मक्र किये हुए है।

पांचवां—अपने किये की सजा पा चुका है, अब छोड़ देना चाहिए!

सहसा पासोनियस उठ बैठा और उद्दण्ड भाव से बोला—कौन कहता है कि इसे छोड़ देना चाहिए! नहीं, मुझे मत छोड़ना, वरना पछताओगे! मैं स्वार्थी हूं; विषय-भोगी हूं, मुझ पर भूलकर भी विश्वास न करना। आह! मेरे कारण तुम लोगों को क्या-क्या झेलना पड़ा, इसे सोचकर मेरा जी चाहता है कि अपनी इंद्रियों को जलाकर भस्म कर दूं। मैं अगर सौ जन्म लेकर इस पाप का प्रायश्चित करूं, तो भी मेरा उद्धार न होगा। तुम भूलकर भी मेरा विश्वास न करो। मुझे स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं। विलास के प्रेमी सत्य का पालन नहीं कर सकते। मैं अब भी आपकी कुछ सेवा कर सकता हूं, मुझे ऐसे-ऐसे गुप्त रहस्य मालूम हैं, जिन्हें जानकर आप ईरानियों का संहार कर सकते हैं; लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है और आपसे भी यह कहता हूं कि मुझ पर विश्वास न कीजिए। आज रात को देवी की मैंने सच्चे दिल से वंदना की है और उन्होंने मुझे ऐसे यंत्र बताये हैं, जिनसे हम शत्रुओं को परास्त कर सकते हैं, ईरानियों के बढ़ते हुए दल को आज भी आन की आन में उड़ा सकते हैं। लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है। मैं यहां से बाहर निकलकर इन बातों को भूल जाऊंगा। बहुत संशय हैं, कि फिर ईरानियों की गुप्त सहायता करने लगूं। इसलिए मुझ पर विश्वास न कीजिए।

एक यूनानी—देखो-देखो क्या कहता है?

दूसरा—सच्चा आदमी मालूम होता है।

तीसरा—अपने अपराधों को आप स्वीकार कर रहा है।

चौथा—इसे क्षमा कर देना चाहिए और यह सब बातें पूछ लेनी चाहिए।

पांचवां—देखो, यह नहीं कहता कि मुझे छोड़ दो। हमको बार-बार याद दिलाता जाता है कि मुझ पर विश्वास न करो!

छठा—रात भर के कष्ट ने होश ठंडे कर दिये, अब आंखें खुली हैं।

पासोनियस—क्या तुम लोग मुझे छोड़ने की बातचीत कर रहे हो? मैं फिर कहता हूं, मैं विश्वास के योग्य नहीं हूं। मैं द्रोही हूं। मुझे ईरानियों के बहुत-से भेद मालूम हैं, एक बार उनकी सेना में पहुंच जाऊं तो उनका मित्र बनकर सर्वनाश कर दूं, पर मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है।

एक यूनानी—धोखेबाज इतनी सच्ची बात नहीं कह सकता!

दूसरा—पहले स्वार्थांध हो गया था; पर अब आंखें खुली हैं!

तीसरा—देशद्रोही से भी अपने मतलब की बातें मालूम कर लेने में कोई हानि नहीं है। अगर वह अपने वचन पूरे करे तो हमें इसे छोड़ देना चाहिए।

चौथा—देवी की प्रेरणा से इसकी कायापलट हुई है।

पांचवां—पापियों में भी आत्मा का प्रकाश रहता है और कष्ट पाकर जाग्रत हो जाता है। यह समझना कि जिसने एक बार पाप किया, वह फिर कभी पुण्य कर ही नहीं सकता, मानव-चरित्र के एक प्रधान तत्त्व का अपवाद करना है।

छठा—हम इसको यहां से गाते-बजाते ले चलेंगे।

जन-समूह को चकमा देना कितना आसान है। जनसत्तावाद का सबसे निर्बल अंग यही है। जनता तो नेक और बद की तमीज नहीं रखती। उस पर धूर्तों, रंगे-सियारों का जादू आसानी से चल जाता है। अभी एक दिन पहले जिस पासोनियस की गरदन पर तलवार चलायी जा रही थी, उसी को जलूस के साथ मंदिर से निकालने की तैयारियां होने लगीं, क्योंकि वह धूर्त था और जानता था कि जनता की कील क्योंकर घुमायी जा सकती है।

एक स्त्री—गाने-बजाने वालों को बुलाओ, पासोनियस शरीफ है।

दूसरी—हां-हां, पहले चलकर उससे क्षमा मांगो, हमने उसके साथ जरूरत से ज्यादा सख्ती की।

पासोनियस—आप लोगों ने पूछा होता तो मैं कल ही सारी बातें आपको बता देता, तब आपको मालूम होता कि मुझे मार डालना उचित है या जीता रखना।

कई स्त्री-पुरुष—हाय-हाय हमसे बड़ी भूल हुई। हमारे सच्चे पासोनियस!

सहसा एक वृद्धा स्त्री किसी तरफ से दौड़ती हुई आयी और मंदिर के सबसे ऊंचे जीने पर खड़ी होकर बोली—तुम लोगों को क्या हो गया है? यूनान के बेटे आज इतने ज्ञानशून्य हो गये हैं कि झूठे और सच्चे में विवेक नहीं कर सकते? तुम पासोनियस पर विश्वास करते हो? जिस पासोनियस ने सैकड़ों स्त्रियों और बालकों को अनाथ कर दिया, सैकड़ों घरों में कोई दिया जलाने वाला न छोड़ा, हमारे देवताओं का, हमारे पुरुषों का घोर अपमान किया, उसकी दो-चार चिकनी-चुपड़ी बातों पर तुम इतने फूल उठे। याद रखो, अब की पासोनियस बाहर निकला तो फिर तुम्हारी कुशल नहीं। यूनान पर ईरान का राज्य होगा और यूनानी ललनाएं ईरानियों की कुदृष्टि का शिकार बनेंगी। देवी की आज्ञा है कि पासोनियस फिर बाहर न निकलने पाये। अगर तुम्हें अपना देश प्यारा है, अपनी माताओं और बहनों की आबरू प्यारी है तो मंदिर के द्वार को चुन दो। जिससे देशद्रोही को फिर बाहर न निकलने और तुम लोगों को बहकाने का मौका न मिले। यह देखो, पहला पत्थर मैं अपने हाथों से रखती हूं।

लोगों ने विस्मित होकर देखा—यह मंदिर की पुजारिन और पासोनियस की माता थी।

दम के दम में पत्थरों के ढेर लग गये और मंदिर का द्वार चुन दिया गया। पासोनियस भीतर दांत पीसता रह गया।

वीर माता, तुम्हें धन्य है! ऐसी ही माताओं से देश का मुख उज्ज्वल होता है, जो देश-हित के सामने मातृ-स्नेह की धूल-बराबर परवाह नहीं करतीं! उनके पुत्र देश के लिए होते हैं, देश पुत्र के लिए नहीं होता।

प्रवचन

हंस की रहनी

(पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा कबीर आश्रम, प्रीतमनगर, इलाहाबाद में रविवारीय सत्संग में दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति— श्री रामकेश्वर जी)

सज्जनो तथा देवियो! हमें दुख क्यों होता है? हर मानव के जीवन में दुख है। इस दुख का कारण क्या है। यह एक ज्वलंत प्रश्न है। आइये आज इसी विषय पर कुछ विचार-विमर्श किया जाये।

यों तो शारीरिक और मानसिक दो दुख मुख्य हैं लेकिन मानसिक दुख सबसे बड़ा दुख है। हर इंसान अपने मन में उलझा है और अपने मन से निरंतर पीड़ित रहता है। इसलिए हर मनुष्य का यह परम लक्ष्य है कि उसका दुख दूर हो। "अथ त्रिविध दुःखरत्यन्त निवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" तीनों दुखों की अत्यन्त निवृत्ति ही अत्यन्त पुरुषार्थ है। अत्यन्त पुरुषार्थ यानी परम लक्ष्य है—दुखों की अत्यन्त निवृत्ति अर्थात दुख बिलकुल न होना—यही मनुष्य का परम पुरुषार्थ है। लेकिन पहले यह समझें कि दुख होता क्यों है। दुख का कारण क्या है, इसको समझना परमावश्यक है क्योंकि दुख का कारण समझे बिना उसका निदान नहीं हो सकता।

हम अपने दुख का कारण सदैव दूसरों को मानते हैं। हम मानते हैं कि अमुक ने ही हमें दुख दिया लेकिन दुख का कारण कोई दूसरा नहीं है। दुख का कारण हमारा अपना ही अविवेक है। मनुष्य को उसकी अपनी ही इच्छाएं भटकाती हैं। इच्छाओं से कोई फायदा नहीं होता है फिर भी इच्छाएं उसको भटकाती हैं और इच्छाएं उसको बहुत प्रिय लगती हैं। इच्छा और आवश्यकता ये दोनों अलग-अलग दो बातें हैं। इनको भी समझना चाहिए। आवश्यकता वह है जिसके बिना जीवन न चले और आवश्यकता की पूर्ति अपने आप होती है। आदमी केवल परिश्रम करता चले तो आवश्यकता की पूर्ति अपने आप होती रहती है। लेकिन चाहे जितना श्रम किया जाये और चाहे जो कुछ भी किया जाये, इच्छा की पूर्ति नहीं होती है क्योंकि एक के बाद दूसरी इच्छा खड़ी हो जाती है और आदमी भुवा के जाल में पड़ जाता है। हर आदमी अपने ही बनाये जाल में उलझा हुआ है।

आदमी इच्छाओं का जाल बनाता है और उसी में उलझ जाता है। आदमी के लिए इतना काफी है कि खाने के लिए पेटभर अन्न मिल जाये, पहनने के लिए कपड़े मिल जायें और रहने के लिए घर मिल जाये फिर क्या परेशानी है। लेकिन इतना होने पर भी परेशानी होती है। आदमी पेटभर खाता है, तनभर पहनता है और रहने भर के लिए उसके मकान भी है, फिर भी उसका मन दुखी है, क्यों? क्योंकि इच्छाएं उसको परेशान करती हैं। इन इच्छाओं को परखना और समझना चाहिए तथा इन्हीं इच्छाओं को घटाना चाहिए। आवश्यकता और इच्छा के भेद को समझना चाहिए।

जो जीवन के लिए न्यूनतम उपयोगी पदार्थ हैं, वे आवश्यकता हैं, बाकी इच्छा का जाल है। सहज रूप से परिश्रम करते हुए जीवन स्तर बढ़ जाये तो कोई हर्ज नहीं है। आदमी रोटी-सब्जी खाता है, दाल भी मिल जाये उसके साथ, घी भी मिल जाये तो अच्छा है, कोई बुरा नहीं है। अगर रोटी के साथ सब्जी न मिले, नमक ही मिले और मन निर्मल हो तो तकलीफ नहीं होती है। लेकिन मन यदि गंदा होता है तो रोटी के साथ घी और घी ही नहीं दूध और मेवे भी मिलें तथा और भी कीमती-कीमती चीजें मिलें तो भी सुख न होगा। इसलिए आवश्यक यही है कि हम आवश्यकता और इच्छा इन दोनों के भेद को समझें और दोनों के भेद को समझकर केवल आवश्यकता की पूर्ति के लिए श्रम करें। अगर श्रम करते रहेंगे तो आवश्यकता की पूर्ति होती रहेगी।

जिन चीजों की हम इच्छा करते हैं आवश्यकता से अधिक की चीजें होती हैं। खाते तो सब हैं लेकिन खाने के स्तर में सोचते रहते हैं। कपड़े के स्तर में सोचते रहते हैं। पैदल चलते हैं तो साइकिल की इच्छा होती है। साइकिल हो जाती है तो मोटरसाइकिल की इच्छा हो जाती है और इसीप्रकार फिर कार की इच्छा होने लगती है। फिर आगे हवाई जहाज की भी इच्छा उठने लगती है और पता नहीं यह इच्छा उठते-उठते कहां लेकर चली जाती है। इच्छा में तो आदमी केवल भटकता है! केवल भटकता है!!

भटकने का मतलब है चित्त का भटकना। चलना-फिरना भटकना नहीं है। हर आदमी को काम करना पड़ता है। हर आदमी को एक जगह से दूसरी जगह जाना पड़ता है। इसलिए यह चलना-फिरना भटकना नहीं है किंतु चित्त का भटकना ही भटकना है। चित्त का चंचल होना, चित्त का शांत न होना ही भटकना है। अंततः इंसान के हाथ में केवल भटकना आता है और वही भटकना उसके चित्त को निरंतर पीड़ित करता है। चित्त में विश्राम हो, इससे बड़ा सुख और कुछ नहीं है। चित्त में शांति हो, तृप्ति हो, चित्त में चंचलता न हो तो इससे बड़ा आनन्द और क्या होगा। इसलिए हर इंसान को समझना चाहिए कि दुख क्यों है और दुख का निदान कहां है।

भगवान नहीं मिलता है इसलिए लोगों को बड़ा दुख है, ऐसी बात नहीं है। हमने जो इच्छा का जाल बना रखा है वही हमें दुख देता है। हमने जो राग कर रखा है, वही हमें दुख देता है। हमने जो द्वेष कर रखा है वही हमें दुख देता है। हमारे चित्त की ईर्ष्या, क्रोध, मद और मत्सर हमें पीड़ित कर रहे हैं। हमारे चित्त के विकार हमें जला रहे हैं। भगवान नहीं मिला इसलिए हम दुखी नहीं हैं। भगवान तो पहले से ही मिला है। भगवान को हम समझते कहां है। भगवान कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो मिले। अगर भगवान मिलेगा तो बिछुड़ जायेगा। अगर ऐसा भगवान मिले जो बिछुड़ जाये तो वह भगवान मिलकर क्या करेगा। वह मिलेगा और फिर बिछुड़ जायेगा। मिली हुई वस्तु बिछुड़ती है यह प्रकृति का अकाट्य नियम है।

साहेब ने कहा है—"संतो आवे जाये सो माया"। जो आये और फिर चली जाये वही माया है। अगर भगवान भी मिलता और बिछुड़ता है तो वह भगवान कहां है। वह तो माया है। इसलिए भगवान, परमात्मा, ब्रह्म और राम जिसे हम कहते हैं, वह मिलने की वस्तु नहीं है। वह हमारी आत्मा से अभिन्न है, नित्यप्राप्त है लेकिन हमारा मन तो घूर पर का दाना बिनने में लगा है। वह गंदगी में भटक रहा है। इसलिए मन को शोधने की आवश्यकता है।

अपने चित्त का शोधन करें, अपने विचारों को परिमार्जित करें और अपने मन के भटकाव को दूर करें। संतोष के रास्ते को पकड़ें। दूसरे के समान चीजें हमें नहीं मिल सकती हैं यह पक्की बात है क्योंकि सबकी विभिन्नता जग जाहिर है। किसी को भी दूसरे के समान नहीं मिलता है। कोई धनी तो है परन्तु सुन्दर नहीं है। कोई सुन्दर तो है लेकिन बलवान नहीं है। कोई सुन्दर है और बलवान भी है लेकिन धनी नहीं है। कोई सुन्दर है, बलवान है और धनी भी है लेकिन कुछ और अभाव उसमें है। इसलिए दूसरों के समान हमें सब कुछ मिल नहीं सकता।

अगर हम अविवेकी हैं तो चित्त की जलन रहेगी और अगर हमारे में विवेक है तो संसार की ऊंची-नीची स्थितियां, संसार की विषमताएं हमें छू भी नहीं सकती हैं। विवेकवान इन सब चीजों से अपने आपको ऊपर रखता है। उसके सारे आचार-विचार पवित्र होते हैं। उसके सारे कर्म पवित्र होते हैं। उसके मन, उसकी रहनी, उसकी वाणी, सब कुछ पवित्र होते हैं। कबीर साहेब ने कहा है—

हरिजन हंस दशा लिये डोले, निर्मल नाम चुनी चुनि बोले।
मुक्ताहल लिये चोंच लोभावै, मौन रहे कि हरि यश गावै।
मान सरोवर तट के बासी, राम चरण चित अन्त उदासी।
कागा कुबुधि निकट नहिं आवै, प्रतिदिन हंसा दर्शन पावै।
नीर क्षीर का करे निबेरा, कहहिं कबीर सोई जन मेरा।

साहेब कहते हैं कि जो हरिजन होता है वह हंसदशा को लिये-लिये डोलता है। वह हंस की रहनी को लेकर डोलता है। डोलने का अर्थ है विचरण करना।

'हरिजन' शब्द का अर्थ क्या है। आज तो 'हरिजन' शब्द का वही अर्थ ज्यादा प्रचलित हो गया है जो गांधीजी ने कभी दिया था। गांधीजी ने 'हरिजन' शब्द उन लोगों को दिया था जिनको सवर्ण नामधारी लोगों ने अछूत कहा था और वह अछूतत्व बड़ा अनर्थ पैदा कर रहा था। गांधीजी शुरू से ही इसके विरोधी थे। उन्होंने 'हरिजन' उनको कहना शुरू किया जिनको लोगों ने अछूत मान लिया था। लेकिन मूलरूप में हरिजन शब्द संतों के लिए है।

'हरिजन' शब्द पुराना है और कम से कम 'हरि' और 'जन' इन दोनों को मिलाकर जो 'हरिजन' शब्द है वह तो नहीं किंतु 'हरि' शब्द बहुत पुराना है। वेदों में 'हरि' का अर्थ घोड़ा है। वाल्मीकि रामायण में हरि का अर्थ वानर है। कोशकारों ने 'हरि' के अनेक अर्थ किये हैं। ईसा के समय के लगभग 'हरि' शब्द ईश्वरपरक होना शुरू हुआ और गुप्तकाल में फला-फूला।

कबीर साहेब के जमाने में 'हरि' शब्द, 'हरिजन' शब्द खूब था। कबीर साहेब के करीब एक हजार वर्ष पूर्व 'हरि' शब्द आ गया था और उनके कोई तीन-चार सौ वर्ष पूर्व से ही 'राम' शब्द भी परमात्मा के रूप में प्रचलित हो गया था। इसलिए 'हरि' और 'राम' इन दोनों शब्दों का काफी प्रयोग उन्होंने अपनी वाणियों में किया।

हरिजन का अर्थ है संतजन, हरिभक्त। 'हरि' का अर्थ है ईश्वर और 'हरि' का अर्थ है ज्ञान। इस प्रकार "हरिभक्त" का अर्थ हुआ ज्ञानवान संत, यही हरिजन का भी अर्थ होता है। हरिजन का सहज अर्थ है संत।

"हरिजन हंस दशा लिये डोले" साहेब कहते हैं कि संतजन हंस की दशा लेकर डोलते हैं। हंस के दो अर्थ हैं। एक पक्षी और दूसरा आत्मा। भारतीय परम्परा में हंस की बड़ी महिमा है। वैदिक साहित्य में भी हंस का कई बार वर्णन आया है और कबीर साहेब की वाणियों में तो दर्जनों बार आया है।

कहते हैं कि हंस पानी और दूध को अलग-अलग कर देता है। वह चोंच मार देता है तो दूध फट जाता है, पानी अलग हो जाता है और दूध का छेना बन जाता है। छेना को वह ले लेता है। अर्थ यह है कि जो नीर-क्षीर विवेकी हो, जड़-चेतन विवेकी हो, कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेकी हो, जिसे यह विवेक हो कि क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना चाहिए वह हंस है। जो विचार करके खाने योग्य को खाये और न खाने योग्य को न खाये, जो ग्रहण करने योग्य को ग्रहण करे और न ग्रहण करने योग्य को न ग्रहण करे वह हंस है। जो जड़-चेतन का विचार करके जड़ का मोह छोड़कर चैतन्य स्वरूप आत्मा में स्थित हो वह हंस है। हर जगह सारासार का विचार करनेवाला हंस है और हंस का दूसरा अर्थ है आत्मा।

"अहं सः" यह संस्कृत का शब्द है। "अहम्" मैं, और "सः" वह, यह "अहं सः" का अर्थ है। "अहं सः" का मतलब है मैं वह हूं अर्थात जिसको मैं खोजता हूं। जिस परमात्मा को, जिस ब्रह्म को, जिस राम को, जिस परम लक्ष्य को, जिस परम प्राप्तव्य को मैं खोजता हूं, वही मैं हूं। इस "अहं सः" के शुरू का 'अ' और अंतिम शब्द का विसर्ग उड़ जाता है तब बन जाता है— हंस। हंस का अर्थ होता है "मैं वह हूं।" हंस शब्द "अहं सः" का बोधक है, आत्मा का बोधक है। यह आत्मा ही मानो हंस है। इसीलिए लोग कहते हैं कि "हंसा उड़ गया"। हंस का अर्थ जीव है। एक दिन यह हंस जीव उड़ जाता है।

"हरिजन हंस दशा लिये डोले" ज्ञानीजन संतजन हंस दशा को लेकर विचरते हैं यानी जो आत्मज्ञानी होते हैं वे लोग आत्मलीन और आत्मपरायण होते हैं। डोलने का मतलब आचरण करना। जैसे गीता में अर्जुन ने पूछा—

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥

उन्होंने पूछा कि हे केशव! स्थितवान के लक्षण क्या हैं? वे कैसे बोलते हैं, कैसे चलते हैं? यहां साधारण बोलना-चालना नहीं कहा जा रहा है। यहां का मतलब है कि उनकी रहनी क्या है। चलना यानी चाल-चलन, रहनी। हंस की रहनी विवेकपूर्वक होती है। वह विवेकपूर्वक बोलता है और विवेकपूर्वक ही ग्रहण और

त्याग करता है। वह विवेकपूर्वक खाता है और विवेकपूर्वक पीता है और विवेकपूर्वक सारा व्यवहार करता है।

जिसका जीवन विवेकपूर्वक हो जाता है उसके जीवन से दुख बिदा हो जाता है। लेकिन लोगों के जीवन में यही नहीं हो पाता है इसलिए लोग दुखी रहते हैं। लोग किसी न किसी मत में भक्त भी हो जाते हैं और साधु भी हो जाते हैं। धार्मिक ग्रंथों को पढ़ते भी हैं और किसी न किसी प्रकार ''भगवान'', ''राम'' या ''रहीम'' भी कहते हैं, सब करते हैं लेकिन विवेक से रह नहीं पाते हैं। इसी एक बात की कमी रह जाती है जिससे सबकुछ करना काम नहीं देता है। अगर एक विवेक से रहना शुरू कर दें तो पूरा जीवन बदल जायेगा। इसलिए साहेब कहते हैं—''हरिजन हंस दशा लिये डोले''। जो संतजन हैं, विवेकीजन हैं वे हंस की दशा लेकर डोलते हैं, नीर-क्षीर विवेकी होकर डोलते हैं।

''निर्मल नाम चुनी चुनि बोले'' वे चुन-चुनकर निर्मल नाम बोलते हैं। नाम संज्ञा है उसका अर्थ है बात। वह निर्मल बात करता है। गोस्वामी जी ने भी कहा है—

की मुख पट दीन्हें रहें, यथा अर्थ भाषन्त।
तुलसी या संसार में, सो विचारयुत संत॥

जो विवेकीजन होते हैं वे या तो मुख का फाटक बन्द रखते हैं या अर्थपूर्ण बात करते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं कि ऐसे ही ज्ञानी संत विचारवान हैं। वाणी का बहुत बड़ा महत्त्व होता है। जो निरर्थक बोलता है, उसका चित्त चंचल हो जाता है। चित्त की चंचलता ही से हम निरर्थक बोलते हैं और निरर्थक बोलने से चित्त की चंचलता बढ़ती है। निरर्थक बोलना और चित्त की चंचलता एक दूसरे के कारण हैं। जिसे शांति प्रिय हो, वह व्यर्थ न बोलकर कम बोले। हजरत मुहम्मद साहेब ने भी कहा है कि जो दुनिया से उदास रहता हो और कम बोलता हो, समझना उसी से तुम्हें सच्चा ज्ञान मिल सकता है।

वाणी का संयम बहुत जरूरी है। ''निर्मल नाम'' का अर्थ है निर्मल बात, विवेकपूर्ण बात। ''हरिजन'' उसे कहते हैं जो हंसत्व में, आत्मज्ञान में विचरता है, नीर-क्षीर का विवेकी होता है और निर्मल वाणी बोलता है। हरिजन वह है जो वाणी का संयम रखता हो अर्थात क्या बोलना चाहिए, यह समझकर बोलता है। साहेब ने अन्यत्र भी कहा है—

बोल तो अमोल है, जो कोई बोले जान।
हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आन॥

अगर बोलने का तरीका जाने तब वाणी इतनी मूल्यवान हो जाती है कि एक-एक वाणी की कीमत नहीं दी जा सकती है। बोलने का तरीका यह है कि हृदयरूपी तराजू पर पहले तौल लिया जाये कि वाणी बोलना कितना उचित है, तब मुख के बाहर उसे लाया जाये। बोलने की यह एक कसौटी है।

सभी लोगों को यह समझना चाहिए कि बोलने का तरीका क्या है। बोलने का तरीका है हृदयरूपी तराजू पर पहले तौल लिया जाये तब मुख के बाहर लाया जाये। हृदयरूपी तराजू पर बिना तौले किसी बात को मुख के बाहर न लाया जाये। इस नियम का पालन न करके हम कितनी असावधानी करते हैं। इस नियम का ध्यान न रखकर हम अनावश्यक बोलते हैं। जो मन में आता है वही बोलते रहते हैं। कोई प्रसंग नहीं रहता है तब भी निरर्थक बोलते रहते हैं और दुख देते और दुख पाते हैं। इसलिए वाणी का संयम बहुत जरूरी है।

अगर हम ज्यादा बोलेंगे तो निश्चित है झूठ निकलेगा और अतिशयोक्तियां होंगी। अधिक बोलने से मिथ्या महिमाएं, मिथ्या निंदा होगी। किसी से यदि वैर-विरोध है तो उसके दुर्गुणों को बढ़ा-चढ़ा कर कहना होगा और अगर किसी से प्रेम होगा तो उसके गुणों को बढ़ा-चढ़ा कर कहना होगा। यह दोनों बातें बहुत गलत हैं और वाणी का असंयम है। इसलिए कम और निर्मल वाणी बोलने की जरूरत है। साहेब कहते हैं—''निर्मल नाम चुनी चुनि बोलै''। जो हरिजन होता है वह चुन-चुनकर निर्मल बात बोलता है। यही उसका लक्षण है। संतजन का यही लक्षण है। ज्ञानी और भक्त का यही लक्षण होता है कि वह हंस दशा में विचरे और निर्णयपूर्ण वाणी बोले। हंसदशा में विचरने का मतलब है नीर-क्षीर विवेकी होना।

हमें किसी ने गाली दे दी या किसी ने आकर कहा कि अमुक ने तुम्हें गाली दी है। हम सुनकर बौखला जाते हैं। हम विचार नहीं करते हैं। हमें विचार करना चाहिए कि आखीर उसने गाली क्यों दी। यह भी हो सकता है कि उसने गाली न दी हो और किसी लगानेवाले ने ऐसा लगा दिया हो या लगा रहा हो क्योंकि दूसरे से सुनी हुई बात ज्यादा लगती है। किसी ने विनोद में हमें कुछ कहा है और सामने कहे तो कुछ नहीं लगेगा लेकिन वही बात उसने दूसरे के सामने कह दी और वह दूसरा आदमी आकर हमें सुना दे तो हमें बहुत चोट लगती है। इसलिए बात का सुधार बहुत जरूरी है। बात-बात में बात बन जाती है और बात-बात में बात बिगड़ जाती है। जिसने बात को सुधार लिया उसकी सब बात बन जाती है। सारा संसार बातरोग से ग्रसित है। एक वातरोग होता है जो किसी-किसी को होता है लेकिन यह बातरोग सबको है। वैसे पचास वर्ष की उम्र के बाद वातरोग होने लगता है लेकिन यह बातरोग तो आदमी जब से होश संभालता है तभी से होने लगता है।

आदमी जितना पागल है उतना पागल कोई नहीं है। घोड़ा, हाथी, बैल तथा और जानवर भी इतना पागल नहीं होते हैं। बैल के सामने बैठकर या खड़े होकर उसको गाली देते रहो। वह पागुर मारता रहेगा लेकिन आदमी को आधी जबान भी और वह भी दूर से ही कह दो तो इतनी चोट उसे लगेगी कि वह व्याकुल हो जायेगा। कितने लोगों को ऐसी चोट लगती है कि वे सदा के लिए कसम ही खा लेते हैं कि न तो उनसे बात करना है और न उनके यहां जाना है। साहेब ने कहा है—

सोना सज्जन साधुजन, टूटि जुरैं सौ बार।
कुजन कुम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार॥

साहेब की यह साखी याद कर लेने लायक है। पहली पंक्ति देखिये—"सोना सज्जन साधु जन", इसमें अलंकार कितना सुन्दर है। "टूटि जुरैं सौ बार" सैकड़ों बार टूटते हैं और टूटकर फिर जुड़ जाते हैं। "कुजन कुम्भ कुम्हार का" यह दूसरी पंक्ति है और इसमें भी कितना सुन्दर अलंकार है। "एकै धका दरार" साहेब कहते हैं कि कुम्हार का घड़ा एक बार धक्का खा जाता है तो फूट जाता है और जहां फूटा फिर तो उसे जुड़ना नहीं है। इसी प्रकार "कुजन" आदमी होता है। जो सज्जन नहीं है वह कुजन है। थोड़ी-सी बात हुई कि चटका और सदा के लिए वैर बना लिया लेकिन सोना अनेक बार टूटता है और उसे एक में मिलाओ तो एक में मिल जाता है और ऐसा मिलता है कि पता नहीं चलता है कि वह कभी टूटा था।

सज्जन और साधुजनों की भी दशा सोने जैसी होती है और कुजन की दशा कुम्हार के घड़े के समान होती है। हमें सज्जन बनना चाहिए, कुजन नहीं बनना चाहिए। हमें सोना बनना है, मिट्टी का घड़ा नहीं बनना है। इसीलिए "कुजन कुम्भ कुम्हार का" में कुम्भ तो साहेब ने कहा है लेकिन ऐसे कुम्भ वे कह देते जो धातु का बना होता तब बात ठीक न होती क्योंकि धातु का घड़ा टूटता है तो फिर जुड़ जाता है। उसे गलाकर मिस्त्री लोग जोड़ लेते हैं। यहां साहेब ने कुम्हार का घड़ा कहा है। बात को समझाने में साहेब कितने माहिर और कितने प्रगल्भ थे कि सोचते ही बनता है। वे ऐसे-ऐसे उदाहरण खोज लेते थे जो आदमी के हृदय में सीधे प्रभावकारी हो जाता है। यहां बात को समझाने के लिए उन्होंने "कुम्हार" शब्द लगाया और कहा—"कुजन कुम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार।"

हम सज्जन हों, दुर्जन न हों। हम दूसरे की बात सहें। जो अहंभाव रखनेवाला होता है उसको तकलीफ ज्यादा होती है। वह थोड़ी-थोड़ी बातें सह नहीं पाता है। एक दूसरे के प्रति जो बात-व्यवहार होता है, उसका आपस में बैठकर बढ़िया समाधान हो सकता है लेकिन ऐसा नहीं होता है। उसमें किसी के मुख से जो कुछ निकल गया उसी को चोट मान लिये, लेकिन भाई, जोश और होश दोनों में बड़ा फरक है। वही आदमी होश में होगा तो ग्लानि करेगा कि मैंने गलत कहा। गलत बात कहकर सबको ग्लानि होती है कि फिर गलत नहीं कहेंगे। गलती तो सबसे हो जाती है। यदि किसी के बारे में आपसे कुछ गलत निकल गया तो आप उसको निर्मानतापूर्वक स्वीकारें और आवश्यकता हो तो उससे

क्षमा भी मांग लें। यदि क्षमा मांगना उपयुक्त न हो तो नम्र हो जायें और फिर ऐसी गलती न दुहरायें। अपनी गलती को स्वीकारें और दूसरे से गलती हो गयी हो तो उसे क्षमा कर दें।

अपनी गलती स्वीकारना और दूसरे की गलती को क्षमा करना यह व्यवहार की मधुरता के लिए महौषधि है। लोग आपस में खटपट करते रहते हैं क्योंकि एक दूसरे को समझना ही नहीं चाहते। हमारे में गलती है, इसको स्वीकारना नहीं जानते हैं। इससे अधिक तौहीनी की बात और क्या होगी कि अपनी गलती को न स्वीकारें। सबमें गलती है। सबसे भूल होती है। इसलिए अपनी भूलों को स्वीकारना और उनको छोड़ना तथा दूसरों की भूलों के लिए क्षमा करना—यही एक सूत्र हम ले लें तो व्यवहार में आनन्द आ जाये। इसलिए साहेब कहते हैं कि जो संतजन हैं, हरिजन हैं, भक्तजन हैं वे चुन-चुनकर निर्मल वाणी बोलते हैं। निर्मल वाणी का मतलब है उपयुक्त वाणी, जो सत्य हो, प्रिय हो और हितकर हो। संतजन सत्य, प्रिय और मीठी वाणी बोलते हैं। विचारपूर्वक बोलते हैं और कम बोलते हैं। कम बोलना बहुत जरूरी है। जो ज्यादा बोलेगा निश्चित है कि वह अनियंत्रित बोलेगा। उसकी बोली में झूठ होगा, अतिशयोक्ति होगी, राग-द्वेष बढ़ाने वाली बात भी होगी और चित्त की चंचलता उससे बढ़ेगी। आदमी अगर ज्यादा बोलता रहेगा तो उसमें अशांति रहेगी और अगर कम बोलेगा तो शांति रहेगी। इसलिए कम बोलना चाहिए। विवेक से बोलना चाहिए।

"मुक्ताहल लिये चोंच लोभावै, मौन रहे कि हरि यश गावै"। संत का, भक्त का लक्षण क्या है? वह है—"मुक्ताहल लिये चोंच लोभावै" वह हंस मुख में मोती लेकर लोगों को लुभाता है कि देखो, तुम भी मोती लो। यह आलंकारिक भाषा में कथन है। संत ही हंस हैं और मुक्ताहल है ज्ञान की वाणी। ज्ञान की वाणी से वे सबको आकर्षित करते हैं और सत्पथ पर लगाते हैं। अच्छे लोगों की बड़ी जरूरत है। जिनकी अच्छी रहनी हो, जो अच्छी वाणी बोलते हों, जिनके अच्छे आचार-विचार हों, जिनका अच्छा मन हो, ऐसे लोगों की संसार में बड़ी आवश्यकता है। वकीलों की जितनी आवश्यकता है, डाक्टरों की जितनी आवश्यकता है, विद्वानों की जितनी आवश्यकता है, उससे ज्यादा आवश्यकता अच्छे मन और अच्छे आचार वाले लोगों की है।

आपके पास सब कुछ हो लेकिन अच्छा मन न हो तो कभी शांति न मिलेगी। अच्छा मन हो तो बाकी चीजें न भी हों तो भी आप आनन्द से रहेंगे। मैंने शुरू में ही कहा कि धन तो कमोवेश रहता ही है। दूसरों के समान हमारे पास धन नहीं हो सकता है, तन नहीं हो सकता है। सबके धन और बल में अन्तर तो रहेगा ही लेकिन एक चीज है मन यदि वह शीतल हो जाये तो बस, सब समय आनन्द होगा, सब समय सुख होगा।

साहेब कहते हैं कि संतजन, सज्जन ज्ञान की बातों से लोगों को सन्मार्ग पर लाते हैं। साहेब ने अन्यत्र कहा है—"सोई हित बन्धू मोही भावे, जात कुमारग मारग लावे"। इसका अर्थ है कि वही हितकारी है, वही मित्र है और वही भाई है जो कुपथ में जाते हुए लोगों को सुपथ पर लाता हो। खाने-पीने को तो सबको है लेकिन सब जल रहे हैं और लोगों के पास खाने-पीने भर का ही नहीं बल्कि बहुत ज्यादा है लेकिन तब भी लोग जल रहे हैं। आपके विचारों से, आपके निर्णय से उनका चित्त शीतल हो जाये तो उनके प्रति आपका यह कितना बड़ा योगदान है ।

भौतिक क्षेत्र में अन्नदान महादान है। आदमी की सबसे बड़ी आवश्यकता है भूख लगने पर अन्न मिल जाये। पानी तो ऐसे भी मिल जाता है लेकिन अन्न दुर्लभ है। किसी भूखे आदमी को अन्न दे दिया जाये तो उसके आनन्द का क्या पूछना। एक करोड़पति आदमी हो जो दस करोड़ रुपया लेकर एक रेगिस्तान में पड़ा हो और उसे भूख लगी हो। तीन दिनों से वह भूख से तड़प रहा हो और कोई उसे मिल जाये और कहे कि भाई, देखो हमारे पास बाजरे की सूखी रोटी है और उसके साथ कुछ भी नहीं है तो वह यही कहेगा कि भैया! उसी को दे दो। वही हमारे लिए अमृत है। रोटी वाला कहे कि मैं पांच करोड़ इसके लिए लूंगा। तब वह करोड़पति यही कहेगा कि भैया, ले लो ये दसों करोड़ रुपये लेकिन

अपनी सूखी रोटी दे दो क्योंकि ये पांच करोड़ या दस करोड़ रुपये उस सूखी रोटी के सामने किस काम के हैं। वह तो नकलझप लगता है। नकलझप का मतलब है टिप-टाप करने की प्रवृत्ति। कितने लोग भोजन में बैठते हैं तो मुंह बिदकाते हैं और कहते हैं कि अरे, सब्जी क्या है। इसमें न तो मसाला है न मिर्च है और न नमक ही है। बड़ी फीकी सब्जी है और दाल भी तो अच्छी नहीं है लेकिन तीव्र भूख लगी हो तो फिर क्या पूछना। जो भी मिले वही अमृत है।

अमृत भोजन क्या है? जब भूख लगी हो तो सूखी रोटी ही अमृत भोजन है। हमारे साथ एक संत रहते थे। वे काफी वृद्ध थे। एक जगह महीनों मैं रह गया। यह बहुत पहले की बात है। दिन में भोजन बनाकर खा लिया जाता था और उसी में से शाम के लिए भी रख दिया जाता था। शाम को सूरज डूबने के पहले ही कहा जाता था कि चलो भाई, पियारो करने। तो वह संत कभी कहते कि आज अमृत भोजन नहीं है। मतलब भूख नहीं लगी है और किसी दिन वे कहते कि आज अमृत भोजन है क्योंकि भूख खूब लगी है।

अमृत भोजन कड़ी भूख में है। इसलिए भूख लगनी चाहिए और उसके लिए कम खाना जरूरी है। ज्यादा खाओगे तो भूख अच्छी नहीं लगेगी। उसी अधभुख में खाओगे तो वह कब्ज करेगा और पेट खराब होगा। इसलिए कम खाओ जिससे टाइम से खूब भूख लग जाये। ऐसा अन्न ठीक से पचता है।

कहने का अभिप्राय है कि बहुत पैसे में सुख नहीं है। जीवन के काम-धाम के लिए पैसा तो जरूरी है लेकिन बहुत वस्तुओं का जखीरा बटोरने में सुख नहीं है। सुख तो मन के संतोष में है, इच्छाओं के त्याग में है और जीवन की निर्मलता में है। इसलिए हंस की रहनी पर ध्यान देने की आवश्यकता है। ऐसी बुद्धि जहां से बने वहां से आधार लेने की आवश्यकता है। ऐसी बुद्धि बनने में जो कारण बनें, सहायक बनें वे धन्य हैं। इसलिए दुनिया में अच्छे और सज्जन लोगों की बड़ी आवश्यकता है।

"मौन रहे कि हरि यश गावै"। विवेकवान पुरुष या तो मौन रहते हैं या हरियश गाते हैं। यहां हरियश का मतलब कोई कथा-कहानी कहना नहीं है। साहेब का हरि अंतरात्मा है और साहेब की हरिकथा ज्ञानचर्चा है क्योंकि अपनी वाणियों में उन्होंने खूब निर्णय दे दिया है।

मौन रहना या हरियश गाना संत का लक्षण है। संत के बाना में हो तो या तो ज्ञान की चर्चा करो या मौन रहो। व्यर्थ न बोलो। वैसी बात न करो जिससे संस्कार खराब हों। जो बोलोगे उसके संस्कार जब बिस्तर पर जाओगे तब मन में गूंजेंगे। अगर ज्ञान की चर्चा किये हो तो ज्ञान की बातें दिमाग में आयेंगी और प्रपंच की चर्चा किये हो तो प्रपंच की बातें दिमाग में आयेंगी। हमारे जीवन के एक-एक क्षण हीरे-मोती से अधिक मूल्यवान हैं और उसको हम व्यर्थ के बकवास में, व्यर्थ की क्रिया में और व्यर्थ के प्रपंच में बिताते हैं। उन सबका फल-संस्कार हमारे अंत:करण पर पड़ता है और हमें भोगना पड़ता है। इसलिए एक-एक क्रिया बहुत ठोंक-बजाकर करनी चाहिए। बड़ी सावधानी से एक-एक बात बोलने या न बोलने का निर्णय लेना चाहिए।

एक-एक काम, एक-एक विचार बहुत सावधानी से ग्रहण करो। आपका मन व्यर्थ की लादी न लादने पाये। जैसे गदहा लादी लादता है वैसे ही हम लोग भी अपने मन पर बहुत लादी लाद लिये हैं। हम लोगों ने संस्कारों की बहुत लादी लाद ली है, बहुत विकार अपने मन में भर लिये हैं। हम बहुत बोझ ढोते हैं। सद्गुरु कबीर साहेब ने भजन में कहा है—

भूले मन समुझि के लाद लदनियाँ।
थोड़ा लाद बहुत मत लादे, टुट जाये गरदनियाँ।
भूखा हो तो भोजन पा ले, आगे हाट न बनियाँ।
प्यासे हो तो पानी पी ले, आगे देश निपनियाँ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, काल के हाथ बिकनियाँ।

उन्होंने कितना अच्छा चेत कराया है। अपने जीवन में संस्कारों का बहुत बोझा हम लाद लेते हैं और जीवन

भर परेशान रहते हैं। हमें अपने मन को बहुत हलका-फुलका रखना चाहिए। तभी मन में शांति और प्रसन्नता बनी रहेगी।

आदमी बिस्तर पर लेटता है तब भी उसको चैन नहीं है। उसका दिमाग परेशान रहता है क्योंकि ऊबड़-खाबड़ सब संस्कार उसने ग्रहण कर रखा है। बिना हेतु की उलझन बना-बनाकर आदमी परेशान है। इसलिए संभल-संभलकर कदम रखना चाहिए। जीवन में आपसे कोई अन्यथा क्रिया न होने पाये। ऐसी सावधानी रखो जिससे जीवन में अन्यथा वाणी न कह दो, अन्यथा विचार न आये, कोई अन्यथा व्यवहार न ले लो। औषधि के समान व्यवहार लो। औषध एक-दो किलो नहीं खायी जाती है, बहुत थोड़ी मात्रा में खायी जाती है। इसीप्रकार बात-विचार, कार्य-व्यवहार भी औषध के समान करो। जो आवश्यक हो वही करो और व्यर्थ की बातचीत और व्यर्थ के व्यवहार से बचो।

मान लो कि हम कहीं गये और लोग हमसे मिलने आये। हम कहें कि भैया, यहां इस मुहल्ले में कितने लोग हैं? कौन-कौन जाति के लोग हैं? इनका व्यापार क्या है? इनके आय के साधन क्या हैं? इनके सम्बन्धी लोग कहां-कहां हैं? इनमें आपस में राग-द्वेष कितना है। अब इतना पूछने और जानने से क्या मतलब है। यह तो केवल दिमाग को खराब करना है। अपने मन के राग-द्वेष को ही मिटाना आवश्यक है। अपने मन में तमाम कूड़ा-कबाड़ है। उसको निकालकर साफ करना है। कहीं गये और बिना जरूरत के बात शुरू कर दिये। इतने में कोई राजनीतिक आदमी आ गया तो बस एक पार्टी ले लिये और दूसरी पार्टी वह ले लिया और फिर बिला जरूरत के विवाद एवं कलह कर दिये।

जहां अपना एक छोटा-सा समाज, एक छोटा-सा परिवार है। जिसमें हम रहते हैं और अच्छा-अच्छा ही करते हैं। वहां भी जब त्रुटियां आती हैं तब राजनीति की बात ही न्यारी है। और राजनीति तो एक घुड़दौड़ से बढ़कर और कुछ नहीं है। उसमें किस पार्टी में त्रुटि नहीं है। हमारी पार्टी दूध की धोयी है और तुम्हारी पार्टी गलत है, इसका क्या मतलब है। लोग राजनीतिक चर्चा करके केवल अपना मन खराब करते हैं।

निरर्थक क्रिया, निरर्थक वाणी, निरर्थक व्यवहार से हम और लादी लादते चले जाते हैं। इसलिए हमें सावधान होकर चलना चाहिए। साधक को चाहिए कि या तो वह मौन रहे या फिर ज्ञान की चर्चा करे। व्यर्थ की बातें न करें। अगर व्यवहार की कोई आवश्यक बात हो तो वह उसकी चर्चा करे।

"मान सरोवर तट के बासी, रामचरण चित अंत उदासी"। विवेकवान संतजन मानसरोवर तट के वासी होते हैं। मानसरोवर एक झील है। कहा जाता है कि मानसरोवर बहुत विशाल झील है और बहुत गहरी है। यह भी कहा जाता है कि वहां हंस रहते हैं। साहेब कहते हैं कि यह पवित्र मन ही मानसरोवर है और पवित्र लोगों की संगति ही मानसरोवर है। सत्संग मानसरोवर है। हंस मानसरोवर में रहते हैं। सज्जन और संत लोग सत्संग में रहते हैं। सत्संग मानसरोवर है और अंततः हमारा मन ही मानसरोवर बन जाना चाहिए। हमें अपने मन को ऐसा बना लेना चाहिए कि वह हमें काटे न। हम सभी को अपने-अपने मन पर ध्यान देना चाहिए।

हमारा मन ही हमें काटता है क्योंकि हमने अपने मन को ऐसा बना लिया है कि वह काटता है। लोग तो रोज-रोज ही अपने मन को कटहा बनाते रहते हैं। घर में या बाहर कहीं भी बिना जरूरत के लड़ गये तो इसका परिणाम क्या होगा। नींद लगी तो सो गये लेकिन जैसे ही नींद खुली कि वही संस्कार आकर मन पर सवार हो गया कि मैं लड़ गया था और अब मन कचोटने लगा। इसप्रकार जो नहीं करना चाहिए उसे करते रहते हैं। इसलिए अंतरात्मा कचोटती रहती है। हमारा मन मानसरोवर बनना चाहिए। मन क्षीरसागर बनना चाहिए। क्षीरसागर पवित्र मन है।

साहेब कहते हैं संतजन मानसरोवर तट के वासी होते हैं यानी वे सत्संग में निवास करते हैं अथवा पवित्र मन में निवास करते हैं। जीव का सम्बन्ध मन से हरदम रहता है इसलिए मन ठीक हो तो सब समय सुख है। और कहीं मन ही गड़बड़ हो जाये तो बाहर चीजें हैं, बड़ा मकान है, खूब रुपये-पैसे हैं, गाड़ी है, घोड़ा है,

बाल-बच्चे हैं, सब हैं लेकिन सुख नहीं मिलेगा क्योंकि सम्बन्ध तो है मन से और मन ही दुरात्मा बना है, मन ही दुष्ट बना है तब सुख कैसे मिलेगा। जिससे रात-दिन का पाला है, जिससे रात-दिन का सम्बन्ध है वह मन है और वही मन ठीक नहीं है तो बाहर की चीजों से सुख कैसे मिलेगा। मन यदि ठीक हो गया तो बाहर में चीजें जितनी हो सब सुख ही सुख है। हम भवन में बैठे हैं कि पेड़ के नीचे बैठे हैं कि झोपड़ी में हैं, कहीं भी हैं लेकिन मन शीतल है तो परमानन्द है।

विवेकवान मानसरोवर तट के वासी होते हैं, सत्संग के निवासी होते हैं और पवित्र मन के मालिक होते हैं। मन पवित्र सत्संग से होता है और पवित्र मन से सत्संग के लिए हमारी और चेष्टा होती है। कमल को पानी में से निकालकर अलग कर देने से कभी भी वह अपनी स्थिति में नहीं रह सकता। पानी में ही रहकर वह हरा-भरा और गगन-मगन रह सकता है। इसीप्रकार अच्छी संगति में ही कोई साधक अपनी साधना की पूर्णता कर सकता है। अच्छी संगति बराबर करते रहो। बराबर पावर चार्जिंग करते रहो। संतों की संगति, सज्जनों की संगति करते रहो जिससे जीवन में कोई गड़बड़ी न होने पावे।

"रामचरण चित अंत उदासी" जो विवेकी पुरुष होते हैं उनका मन राम के चरण में लगा होता है। यह शंका होती है कि कबीर साहेब का राम ऐसा है ही नहीं जिसके चरण हों फिर उन्होंने कैसे कह दिया—राम चरण। इसमें शंका की कोई गुंजाइश नहीं है। उनकी वाणी से बहुत खुलासा है। इसमें दो मत है ही नहीं। जितने आलोचक हैं सब एक स्वर से मानते हैं कि कबीर साहेब के राम के चरण नहीं हैं। वह ज्ञानमात्र है। उन्होंने कहा है—"हृदया बसे तेहि राम न जाना"। किसी शरीरधारी को लोग जो जगतकर्ता भगवान मानते हैं उसका भी खण्डन जब साहेब कर लेते हैं तब वे राम चरण फिर क्यों कहते हैं। इसका उत्तर है कि बस केवल मेल-मिलाप की बात के लिए वे कहते हैं और यहां भी वही मेल-मिलाप की बात है। जगह-जगह वे मेल-मिलाप की बात करते हैं और ऐसे वचन कई जगह कहते हैं। क्योंकि ऐसे सामान्य साधक भी उनके पास आते रहते थे जो विभिन्न सम्प्रदायों से सम्बन्धित होते थे इसलिए उस मेल-मिलाप की शैली में उनको बोलना पड़ता था लेकिन अर्थ उनका वही घट-घटवासी चैतन्य आत्मा का होता था।

"भ्रम बिनु गंजन मणि बिनु नीरख, रूप बिना बहुरूपा"। जहां पर "रूप बिना बहुरूपा" और "थिति बिनु सुरति" अर्थात जहां आलम्बन के बिना सुरति ठहर जाती है, बाहरी रागरंग के बिना जहां आनन्द है वह विलक्षण तत्त्व है। साहेब का कथन मायिक जगत से ऊपर है। उनका कथन उस राम के लिए है जो शुद्ध चैतन्य मात्र है। जो सबका निज स्वरूप है, जो सबकी अपनी आत्मा है वही रामतत्त्व है लेकिन भाषा उनकी अपनी है इसलिए वे कह देते हैं—"रामचरण चित अंत उदासी।"

"रामचरण चित्त" का अभिप्राय यही है—राम में, आत्मा में चित और आत्मज्ञान में रमण और इसका फल होता है "अंत उदासी।" अंत अर्थात अंतःकरण में संसार से वे उदास रहते हैं। संसार में आकर्षण तबतक रहता है जबतक बालबुद्धि होती है। बालबुद्धि जब मिटती जाती है तब संसार का आकर्षण खत्म होता जाता है।

एक छोटे बच्चे को चमकीले कपड़े, मिठाइयां और घुनघुने दे दो, खिलौने दे दो तो वह मगन हो जायेगा लेकिन एक बुजुर्ग के सामने वही सब चीजें रख दो तो वह कहेगा कि क्या तमाशा कर रहे हो। हमारी जितनी स्थूल बुद्धि होती है उतना ही हम बाहर आकर्षित होते हैं। बुद्धि जितनी सूक्ष्म होती जाती है बाहर का आकर्षण उतना ही खत्म होता जाता है। जवानी की चमक-दमक कितने दिन के! बस अट्ठारह से तीस वर्ष तक के अंदर ही तो। एक डाक्टर कहते थे कि महाराज, तीस नहीं उसको और कम मान लीजिए और अट्ठारह से छब्बीस के अंदर ही खास जवानी का सौंदर्य रहता है। हमारी समझ में उतना नहीं आ पाता है लेकिन पच्चीस-छब्बीस वर्ष के बाद ही घिसने लगता है और तीस के बाद तो खीस ही निकल जाती है। हमारे मन में इतना भी बहुत ज्यादा लग सकता है कि अरे, अट्ठारह से तीस तक यानी बारह वर्ष तक। लेकिन बारह वर्ष जाते कोई देर नहीं

लगती है। जवानी की चमक कितने दिनों की? मित्रों के मिलन कितने क्षण के लिए? सम्मान और प्रतिष्ठा भी कितने क्षण के? सुहागरात कितने दिन के हैं? पुत्रोत्सव का दिन कबतक रहेगा? इनमें कहां स्थायित्व है। अंततः सब निरसता में ही तो लौटता है। साहेब ने कहा है—

मैं भंवरा तोहि बरजिया, बन बन बास न लेइ।
अटकेगा कहुं बेलि में, तड़फि तड़फि जिय देइ॥

साहेब कहते हैं कि ऐ भंवरा! मैंने तो तेरे को बारम्बार रोका कि तुम बन-बन में वास मत लो। यदि तू नहीं मानेगा तो कहीं बिषैली लता से फंस जायेगा और तड़प-तड़पकर जान देगा।

भंवर बिलम्बे बाग में, बहु फूलन की बास।
ऐसे जीव बिलम्बे विषय में, अंतहु चले निरास॥

बागों में जाकर भंवरे बिलम गये, मोह गये। वे बहुत फूलों की सुगंधी में मोह गये। उसी प्रकार जीव संसार में मोह गये लेकिन उसका फल क्या हुआ—"अंतहु चले निरास"। अंत में वे निराश होकर चले गये। संसार का फल यही है अंत में निराश होकर चला जाना है। जवानी बुढ़ापा में बदलेगी, अथवा पहले ही चली जायेगी। यह पक्की बात है। देह ही चली जायेगी। संयोग का वियोग होगा। जिनमें हमारी बड़ी ममता है वे छूटेंगे। इसमें कोई चारा नहीं है कि जो हमारे प्रिय हैं वे सब समय हमारे साथ बने रहें। इसलिए हमें यहां भूलना नहीं चाहिए।

"अंत उदासी" अपने अंतःकरण से संसार का आकर्षण मिटाना चाहिए। संसार का आकर्षण जितना मिटेगा उतनी राम में लीनता बढ़ेगी। हम जितना बाहर उलझे हैं उतना ही अपने आपा से, अपने राम से दूर हैं। जितना बाहर से लौटें उतना ही राम में हम लीन हों और उतना ही परमानन्द हो।

"कागा कुबुधि निकट नहिं आवै, प्रतिदिन हंसा दरशन पावै" साहेब कहते हैं कि ऐसे विवेकवान पुरुष के सामने कुबुद्धि रूपी कागा निकट नहीं आते हैं। कुबुद्धि काग है। साहेब कितने कुशल शब्द-शिल्पी हैं। कितने लोग मान लेते हैं कि कबीर साहेब कवि नहीं हैं लेकिन कबीर साहेब महकवि हैं। "कागा कुबुधि निकट नहिं आवै" साहेब कहते हैं कि कुबुद्धि काग है। काग कैसा होता है। वह रंग से काला होता है और वाणी में कठोर होता है अर्थात वह कठोर बोलता है। जहां बैठता है वहां "कर्र" से बोलता है, मधुर नहीं बोल पाता है इसलिए लोग तुरन्त पत्थर मारकर उसको भगा देते हैं।

काग दिनभर गंदी चीजें खाता है और सब पर शंका करता है। कोई उसकी तरफ ताकने भर लगे तो भाग जायेगा। मालूम होता है कि लाखों रुपया बांधे घूम रहा है जिससे उसके पीछे लोग पड़े हैं। इसप्रकार जो दूसरों पर हर समय संदेहशील होते हैं, मलिन मनवाले होते हैं और गंदी चीजें खाते हैं और गंदी बात बोलनेवाले होते हैं वे काग हैं। यह कुबुद्धि ही मानो काग है। "कागा कुबुधि निकट नहिं आवै" विवेकवान पुरुष के सामने कुबुद्धि रूपी काग नहीं आते हैं।

"प्रतिदिन हंसा दरशन पावै" ऐसे हंस प्रतिदिन अर्थात निरन्तर दर्शन पाता है। यहां प्रतिदिन का अर्थ है निरंतर, रोज-रोज। कई जगह ऐसे शब्द आ जाते हैं जिनका अर्थ सीधे नहीं लग पाता है। वहां लाक्षणिक अर्थ करना पड़ता है।

"प्रतिदिन" का अर्थ है रोज-रोज लेकिन यहां प्रतिदिन का लाक्षणिक अर्थ है निरन्तर। "प्रतिदिन हंसा दरशन पावै" ऐसे विवेकवान पुरुष प्रतिदिन आत्म साक्षात्कार में डूबे रहते हैं। आत्मसाक्षात्कार ही दर्शन है।

आत्मसाक्षात्कार का अर्थ है जब चित्त विषयों से हटा रहता है और आत्मलीनता रहती है। यही आत्मसाक्षात्कार है और उसका व्यावहारिक स्वरूप है कि क्रोध, द्वेष, घृणा, शोक, मोह, चिंता, फिक्र, उद्वेग, अशांति न हों। आत्मसाक्षात्कार का यही बाहरी लक्षण है। उसका आंतरिक लक्षण तो बताया नहीं जा सकता। वह तो ऐसी परमशांति है, ऐसा गहन आनन्द है जिसका अलग से कहीं कोई अनुभव ही नहीं है। इसलिए कैसे बताया जाये कि "ऐसे" लगता है।

"नीर क्षीर का करे निबेरा, कहहिं कबीर सोई जन मेरा" अंतिम पंक्ति में साहेब कहते हैं कि जो नीर-क्षीर

का निबेरा करता है वही मेरा जन है। बहुत सारे लोग जब कहने लगे होंगे कि हम तो सच्चे कबीरपंथी हैं, हम तो सच्चे कबीरपंथी हैं। साहेब ने कोई पंथ स्थापित नहीं किया। कबीर साहेब बहुत फक्कड़ और मस्तमौला संत थे लेकिन जितने लोग उनके पीछे आये उसका तो एक समाज बनेगा ही और कोई रूपरेखा बनेगी ही क्योंकि एक साथ चलने के लिए कोई वेश, कोई चिह्न, कुछ मर्यादाएं, कुछ शिष्टाचार, कुछ पारिभाषिक शब्द होते ही हैं। फिर अपने आप पंथ बन जाता है।

साहेब ने निर्णय कर दिया कि जो नीर-क्षीर का निबेरा कर लिया वही मेरा जन है। वही मेरा भक्त है। वही मेरा अनुगामी है और वही मेरा प्रेमी है जो नीर-क्षीर का निबेरा कर ले। जो नीर-क्षीर का विवेक न कर पाये वह मेरा जन कैसे है। खाली कह देने से कि हम कबीरपंथी हैं-हम कबीरपंथी हैं, क्या हम कबीरपंथी हो गये? कबीरपंथी कहलाने से कोई कबीरपंथी नहीं है। साहेब उसके लिए कसौटी देते हैं कि जो नीर-क्षीर का विवेक करे वही मेरा प्यारा है। यह बड़ी निष्पक्षता और बड़ी ईमानदारी की बात है।

कबीरपंथी होने का मतलब क्या है? नीर-क्षीर विवेकी होना। सत्यासत्य का विवेक जो न कर सके वह कौन-सा विवेकी है और वह कौन-सा कबीरपंथी है। जो चमत्कार और अंधविश्वास में रमा है, वह कौन-सा कबीरपंथी है। इसलिए हमें चाहिए कि हम नीर-क्षीर का विवेक करें, सत्य क्या है और असत्य क्या है इसका विवेक करें और असत्य का मोह छोड़कर सत्य को अंगीकार करें, सत्य में रमें। इसी से जीवन में प्रतिष्ठा है और इसी से जीवन में परमानन्द है। इन्हीं शब्दों के साथ और अपनी शुभकामना के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं। ❑

लघु-कथा

तंत्र-मंत्र

लेखक—दिनेन्द्र दास

'भिक्षाम् देहि .....कहते हुए एक तांत्रिक सुरेश के घर घुस गया। सुरेश के मना करने पर भी वह बैठक रूम में पहुंच गया, 'मुझे बहुत भूख लगी है, भोजन दीजिए।' कहते हुए कुर्सी पर जा बैठा। देखने से वह तांत्रिक सिर से पैर तक काला-कलूटा नजर आ रहा था। काला चोला पहने हुए था। गले में हड्डियों की माला, कान में काले कुंडल, हाथों में काले कड़े एवं कई कंठियों की मालाएं, मस्तिष्क पर तीन लाइन का आड़ा चंदन लगाये हुए था। एक हाथ में काला कमंडल, दूसरे हाथ में काली लाठी और कांधे पर काली झोली लटकाया था। उसे देखने से ऐसा लगता था कि मानो कोयला खदान से तुरंत कोई निकलकर आया हो। बड़ा डरावना चेहरा लग रहा था।

तांत्रिक बोला—'ऐसी कोई बात नहीं है, आप घबराइए नहीं, मैं गलत आदमी नहीं हूं। रास्ता चलते-चलते थोड़ा विलंब हो गया। बस, भोजन दे दीजिए, मैं चला जाऊंगा। मैं तो रमता जोगी बहता पानी हूं। यहां से थोड़ी दूर शिवपुर में मेरा डेरा है।'

रंजीता अपने पति सुरेश से बोली—'प्यासे को पानी एवं भूखे को भोजन देना हम गृहस्थों का कर्तव्य है। मैं योगीराज को भोजन देती हूं।' कहते हुए एक थाली में भोजन लाकर तांत्रिक को दे दिया। भोजन के पश्चात तांत्रिक काला कपड़ा बिछाकर पद्मासन में कुछ देर के लिए आंखें मूंदकर बैठ गया।

कुछ समय बाद आंखें खोली और बोला—'इस घर में मुझे अजीब सी भूत-प्रेत की गंध आ रही है। यह भूत-प्रेत तुम्हें आगे बढ़ने नहीं देगा, जिसकी वजह से तुम लोगों को बहुत कष्ट झेलना पड़ता है। यदि तुम लोग चाहोगे कि भूत-प्रेत यहां से बाहर चले जाएं तो मैं

उसे अपनी तंत्र विद्या के द्वारा पकड़ कर अपने साथ ले जा सकता हूं।'

सुरेश ने कहा—'हमारे घर में ऐसा कुछ नहीं है। आप फालतू हमें भ्रम में डाल रहे हैं। हमें तो किसी से कोई परेशानी नहीं है। ना ही कोई शिकवा-शिकायत है।'

रंजीता ने सुरेश की बात काटते हुए कहा, 'महाराज जी, ठीक ही कह रहे हैं। हमारा घर कई दिनों से बिगड़ा हुआ है। हम लोग बहुत परेशान रहते हैं। लड़का दसवीं में दो बार फेल हो गया, लड़की की शादी नहीं हो रही है, आपका प्रमोशन नहीं हो रहा है, मैं हमेशा बीमार रहती हूं। मुझे भी लग रहा है कि घर में कुछ न कुछ है। महाराज जी! आप ठीक कहते हैं। हमारा दुख दूर कर दीजिए। मैं आपके सामने हाथ जोड़ती हूं। भूत-प्रेत के विघ्न हरण के लिए तंत्र-मंत्र, पूजा-पाठ जो कुछ करना हो तो कर लीजिए।'

सुरेश ने रंजीता को डांटते हुए कहा—'तुम भी भ्रम में आ गई।' सुरेश ने तांत्रिक से पुनः कहा—'मुझे तो आप पर बिल्कुल विश्वास नहीं है, आप यहां से चले जाइए।'

'नहीं-नहीं! मैं ऐसे कैसे चला जाऊंगा। तंत्र-मंत्र, पूजा-पाठ पर विश्वास करो। 'विश्वासं फलदायकं' विश्वास करो, तुम्हारा घर शुद्ध हो जाएगा।'

'यदि घर शुद्ध नहीं हुआ तो...।'

'मेरे पूजा-पाठ करने के बाद यदि घर शुद्ध नहीं हुआ तो सारे रुपये वापस। विश्वास न हो तो मेरा मोबाइल नम्बर लिख लीजिए।'

सुरेश ने तांत्रिक का मोबाइल नम्बर अपनी डायरी में लिख लिया। तांत्रिक काला कपड़ा बिछाया और पालथी मारकर पद्मासन में बैठ गया और काली झोली से काले कपड़े की पुतली, मिट्टी से बना हुआ राक्षस, प्लास्टिक से बना हुआ उल्लू और मानव की खोपड़ी निकालकर सामने रख दिया और कहा—'अब देखना तुम्हारे घर के भूत-प्रेत से मेरे लाये हुए राक्षस एवं उनके साथी का डटकर मुकाबला होगा फिर तुम्हारे घर के भूत-प्रेत भय से मेरे पास आयेंगे और मैं उसे पकड़कर झोली में डालकर गंगा में विसर्जित कर दूंगा।'

तांत्रिक मंत्र बुदबुदाते हुए ऊपर-नीचे चारों ओर अपना हाथ लहराया और अपने छिपाए हुए कपड़े से बनी दो काली पुतली को हाथ में पकड़ लिया और कहा—'अब तुम्हारे घर के भूत-प्रेत मेरे कब्जे में हैं। अब तुम लोग बताओ इसे यहां छोड़ दूं या अपने साथ ले जाऊं।' तांत्रिक के हाथ में काली पुतली को देखकर दोनों प्राणी भय से कांपने लगे। रात्रि के करीब बारह बज गये थे। घर के सामने आम के पेड़ में बैठे हुए उल्लू भी घूं-घूं की आवाजें कर रहे थे। रात्रि का सन्नाटा मानो भय को उत्तरोत्तर बढ़ाये जा रहा हो। रंजीता ने सुरेश से कहा—'दे दो ना जी! रुपए तो आते-जाते रहते हैं। फिर कमा लेंगे।'

सुरेश ने चुपचाप अपनी आलमारी से रुपये की एक गड्डी निकालकर तांत्रिक के हाथों में देकर उसे विदा किया।

एक महीना पश्चात सुरेश ने रंजीता से कहा—'तांत्रिक के कर्मकांड पश्चात पिताजी का शरीर शांत हो गया, माताजी को फालिज मार दिया, घर की भैंस मर गई, फसल नष्ट हो गई, लड़का परीक्षा में पुनः फेल हो गया, घर की सुख-शांति के लिए घर बंधन किए थे, पर कुछ भी नहीं हुआ बल्कि अशुभ ही अशुभ हुआ, हाय हमारा बीस हजार बेकार चला गया।' कहते हुए दोनों प्राणी फूट-फूट कर रो पड़े।

शिक्षा—घर में जो घटनाएं घटती हैं, हमें दुख होता है, वह सब दैहिक, दैविक एवं भौतिक ताप की वजह से होता है। मन अशांत हमारे गलत कर्मों की वजह से होता है। इसके लिए पुरुषार्थ, सत्कर्म करें एवं शारीरिक रोग-व्याधि के लिए अच्छे डॉक्टर को दिखाएं। तंत्र-मंत्र, पूजा-पाठ करने से हमारे मन की पीड़ा दूर नहीं हो सकती, न ही शारीरिक पीड़ा दूर हो सकती है। मन की पीड़ा सत्संग, स्वाध्याय, ध्यान, आत्मचिंतन से दूर होगी।

ये भ्रम भूत सकल जग खाया।
जिन-जिन पूजा, तिन जहड़ाया।

(सद्गुरु कबीर साहेब)

❑